

महा उद्घाटन ग्रन्थावली

श्रीमद् भगवद्गीता
लीला सरणिफा
श्रीश्री हरिकथा
संकीर्तन पदावली
संकीर्तन पदावली
श्रीश्री वन्द्यु लीला तरंगिनी
वन्द्यु वाना
उपनिषद् श्रीहृ०
विद्वत् वाम
गौर यानी तृतीय खण्ड
गापीमन्त्र माधुरी

उपनिषद् भावना 'द्वितीय खण्ड
अमेरिका पंथ
प्रेम वाणी
ब्रह्मचर्य तत्त्वयोति
गीता ध्यान (प्रथम खण्ड पृष्ठ खण्ड)
चण्डी विता
सन्देश उद्भव
श्रीमद् भगवत्सूत्रम् (पंचम खण्ड)
महानाम्न व्रत (पौर्वर्षी भाषण)
वैष्णव वेदान्त (वंगला)
एवम् (अंग्रेजी)
गौर सन्देश
श्रीकृष्ण शेष उपदेश
प्रेम सभुट

★

प्राप्ति स्थान

महाउद्घाटन मठ, ५६ मानिकगल्ल मेन रोड, कलकत्ता-५४
श्री श्री महानाम्न अंगन, महुनाथपुर भी० आई० पी० रोड, कलकत्ता-५६
जगन्नाथ धाम, ताता पार्क, मुर्शिदाबाद
महानाम्न मठ, नवद्वीप, नदिया

कृष्णार्क

जगद्गुरु



ममभिरुक्तिः कर्त्तव्यकृत दामपुत्र



हरि-पुरुष जगद्बन्धु

मूल कहानी—कार्तिक चन्द्र दाशगुप्त
अनुवादिका—सुप्रिया त्रिपाठी (मंजुल)

प्रकारात्मक :

श्रीमहानाममल कलचलर

एषट् वेलेभेर द्रष्ट

श्रीश्री महानाम अंगन

खुलाख पुर

कलकता-१६

प्रथम प्रकारा-२१-१०-८७

हरिपुरबाद ११६

आवाकार : रचिरंजन जाना

सुरक :

आर० डी० प्रिंगिण वक्स

२१, मोवा बागान स्ट्रीट

कलकता-६

मूमिका

श्री.कृष्ण मथुरा में हैं। हुन्दावनकन्द के बिना हुन्दावन अंशकार से बिना हुआ है। कहीं भी आनन्द नहीं है। कृष्ण के अभाव में राधा-रानी की अवस्था दर्शम दशा में पहुँच चुकी है। मैं पुनः आक्रां गा कृष्ण के इस बात पर राधा रानी अभी तक जीवित रही। विरह की वेदना दिन-दिन बढ़ती जाती है। व्याकुलता तीव्र से तीव्रतर और तन्मयता गहरे से गहरा होता रहा। कृष्ण के ध्यान में राधारानी निमग्न-अवस्थ की भाषा में—“अप्यन्ती रहसिस्थिता”

विरह की अन्तिम अवस्था में राधा के अन्तर आत्मा कृष्णमय हो गया। बाहर से राधा के रूप देखती हैं उसकी सखियाँ परन्तु राधा के अन्तर में प्रेम की देवता श्री कृष्ण पूर्णतया विराजमान हैं। हुन्दावन बिहारी श्री कृष्ण हुन्दावन के कुंज में ही विराज करते हैं। मथुरा विरह के चरम क्षणों में राधा कृष्ण दोनों एक हो गये। वह अन्तः कृष्ण राधा रानी हैं और यद्यपि और छटि।

ब्रज लीला के नायक हैं श्री.कृष्ण। राधारानी और कन्दारवली लीला के दो नायिकाएँ—मूर्तिमयी दिन और रात की तरह नित्य प्रिया। राधारानी बामा नायिका और कन्दारवली दाहिना नायिका। प्रेम लीला के आस्वादन के लिये इस विपश्चता की सृष्टि हुई। यही विपश्चता तब तक है जब तक श्रीकृष्ण बीच में हैं परन्तु विरह में यह दृष्ट जाती है। आज कृष्ण की विरह में दोनों ही व्याकुल हो गये।

(ख)

प्रिय सखि शैल्या के मुख से राधारानी की दशम दशाकी बात सुनकर चन्द्रावली को बहुत दुःख हुआ। विरह वेदना की निविड़ता में दोनों की विपश्चिता कली गई समवेदना से दोनों अंतरंग हो गये। शैल्या को लेकर चन्द्रावली तुरन्त राधारानी के पास आ पहुँची। राधारानी की मरण की दशा को देखकर चन्द्रावली की आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। गहरे वेदना से निरचल राधा ने चन्द्रावली के मुख की ओर दृष्टि रखकर बोला—अपने नोल रतन को तुम्हें दिया

श्री कृष्ण मथुरा में हैं। राधा ने कैसे कृष्ण को समर्पण किया ?

कृष्ण और कृष्ण नाम दोनों ही एक ही वस्तु है कोई भेद नहीं। श्री राधा ने स्वयं ही कृष्ण नामरूपी महामंत्र पुकार के उसका प्राणकान्त कृष्ण को चन्द्रावली को समर्पण किया। भजन राज्य में कृष्ण नाम रूप मंत्र दान कार्य सबसे पहले यही हुआ। इसलिए श्री राधा होती हैं, पहले गुरु और चन्द्रावली होती हैं, पहली शिष्या दान के वस्तु हुआ कृष्ण नाम रूप मंत्र।

कृष्णमय राधा के मुख से निकला हुआ कृष्ण से अभिन्न कृष्ण नाम चन्द्रावली के काने के भीतर जाकर उसके हृदय में प्रवेश किया। चन्द्रावली नाम से, मतवाली होके एकदम परिवर्तित हो गयी। (नाथी) कृष्ण ने जैसे राधारानी के अन्तर में प्रवेश कर उसको गौर चन्द्र बना दिया ऐसे ही कृष्ण नाम ने चन्द्रावली के हृदय में पहुँच कर उसको नित्यानन्द चंद्र में परिवर्तित किया।

सखियों के साथ चन्द्रावली गुरु राधारानी के चरणों में लोट गई। राधा के प्रति चन्द्रावली की समवेदना अब उसकी आनुगत्यमें रूपान्तरित हुई। चन्द्रावली ने राधारानी के सममुख आत्म समर्पण किया। गुरु

(ग)

राधारानी ने शिष्या चन्द्रावली को कृष्ण नाम दान किया। चन्द्रावली ने भी गुरु को आत्म दान किया।

अब गुरु दक्षिणा का अवसर हुआ। राधा रानी ने चन्द्रावली से दक्षिणा माँगा। प्रभु जगत्वंशु सुन्दर की भाषा में—

“पूई दक्षिणा दाड संकीर्तन प्रचारण”

कृष्ण नाम मंत्र की परम परिणति होता है संकीर्तन। राधारानी चन्द्रावली को अपने प्राणों धन देकर चन्द्रावली के मुख से कृष्ण नाम का कीर्तन सुनना चाहती है। परन्तु स्वयं ही सुनना नहीं चाहती बल्कि जगत के भीतर हर घर में सभी नर-नारियों को हरि नाम का प्रचारण रूप कार्य को दक्षिणा स्वरूप माँग रही हैं। यह कार्य ऐसा नहीं जो अभी कर सके। अतः चन्द्रावली राधा रानी की श्रुणी हो गई। प्रभु जगत्वंशु ने कहा—“हरिनाम ही है “राई श्रृणु”।

यह राई श्रृणु चुकाने के लिये कृष्ण नाम मयी चन्द्रावली ने नितार्ई चन्द्र होकर नदीया के धर-धर में आँसुओं की धारा से वक्ष प्लावित कर हरिनाम का कीर्तन करने लगी। राई महाजन का श्रृण चुकाने के लिए कृष्ण चन्द्र और चन्द्रावली दोनों ने गौर चन्द्र और नितार्ई चन्द्र होकर नदीया राज्य में फकीर बन गये।

महाप्रभु गौर सुन्दर के साथ कीर्तन में मिलित हो श्री नित्यानन्द चन्द्र कृष्ण नाम और राधा प्रेम की बाँटते रहें। बहुत आनन्द भी पाते रहें। तत्परचाव गौरचन्द्र इस मिलना नन्द में विरह की प्रस्तावना ले आये। स्वयं नीलाचल “पुरी धाम” के “गन्भीरा” में रहकर नितार्ई चन्द्र को गोड़ देश में प्रभु की इच्छापूर्ण करने हेतु भेज दिया।

मिलन और विरह दोनों में विरह अधिक प्रिय माना जाता है।

क्योंकि मिलन में प्रिय अपने पास में रहता है। विरह में प्रिय त्रिभुवनमय हो जाता है।

गौड़ देश में नितार्ह चन्द्र अकेले हैं गौर के विरह में विह्वल हो उठती है। यह विह्वल नितार्ह चन्द्र की हृदय रूपी दूरवाजा से होकर गौरचन्द्र ने नितार्ह चन्द्र की अन्तर राज्य में प्रवेश कर उसके संग मुख की अपूर्ण वासना की तुष्टि की। नितार्हचंद्र गौरांग प्रेम में मग्न हो गये। हमेशा मुख से श्रीकृष्ण चैतन्य नाम को जपते हैं और सभी को लेकर श्रीकृष्ण चैतन्य नाम का कर्त्तन करते हैं और करवाते हैं।

नितार्ह क्रमशः गौरमय हो उठते हैं। गौराविष्ट नितार्ह चंद्र का हृदय अब महा भाव का समुद्र हो उठा है। नितार्ह अन्तर में गौरांग और बाहर में नित्यानन्द। रस के देवता गौर चन्द्र ने नितार्ह चन्द्र की अन्तर राज्य में पूर्णतया नित्य ही विराजमान। यह पूर्णता की रूप होते हैं फरीदपुर चन्द्र हरिपुरुष।

हरिपुरुष का प्रकार्य नाम जगतबंधु। प्रभु जगतबंधु का दिव्य जन्म और उनकी लीला कदानियाँ अवलम्बन करके बंगलादेश के विख्यात शिशु प्रन्थकार कार्तिक चंद्र दाश गुप्त ने एक छोटा सा प्रन्थ 'हरिपुरुष जगतबंधु' लिखा था। मूल लेखक के भावों को अविकृत रूप से हिन्दी भाषा में श्रीमती सुप्रिया मंजुल (त्रिपाठी ने) अनुवाद किया।

मेरा आशा है कि सभी हिन्दी भाषा-भाषी भक्त-जन इस प्रन्थ का पाठ करके भक्ति धन से धनी होंगे। इसी आशा के साथ—

दासानु दास

नन्दगोपाल साहा

भूमिका में हरिपुरुष जगतबंधु के तत्त्व पर जो मैंने निवेदित किया है उसका भाव डा० श. मन्. महानाथ ब्रत ब्रजचारीजी ने लिखा हुआ—
“श्री श्री हरिपुरुष ध्यानमंजल” प्रन्थ से मिला है।

प्रकाशक की ओर से

श्री श्री गौर हरि हृन्दावन में आये थे।

श्री श्री बंशुमुन्दर भी एक से अधिक बार आये थे। ब्रज भूमि के राहों में वे अपने समस्त शरीर को धरत से आच्छादित कर चले-फिरते थे। इसीलिये ब्रज वासियों ने उन्हें गुंघट वाला कहा करते।

चिब्रली साल श्री हृन्दावन में ब्रह्मकुण्ड के नजदक बंधु कुंज में उनको प्रतिष्ठित किया गया। ब्रजवासी भक्त जन जैसे प्रभु को सहज रूप में जान और समझ सके इसलिये यह छोटा सा प्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इस प्रन्थ की मूल रचना बंगला भाषा में हुई। अध्यापिका श्रीमती सिमा साहा की प्रेम छावनी कल्याणिया श्रीमती सुप्रिया मंजुल (त्रिपाठी) ने इस प्रन्थ को हिन्दी भाषा में अनुवाद किया परंतु अनुवाद करने के कारण कुछ पारिश्रमिक नहीं ली। इस प्रन्थ प्रकाशन के व्यवहार विरहल सिमा जी ने वहन की।

इसलिए श्री महानाथ ब्रत कलचरल एण्ड वेलफेयर ट्रस्ट ने सुप्रिया जी सिमार्वा दोनों को दार्दिक धन्यवाद देते हैं और प्रभु के सम्मुख दोनों का कल्याण चाहते हैं।

बिनीव—

सम्पादक—

श्री महानाथ ब्रत कलचरल एण्ड वेलफेयर ट्रस्ट

ॐ

आदि-पर्व

ब्राह्मण पण्डित व्यक्ति । अपने पुत्र का जन्मकुण्डली स्वयं ही तैयार करिये थे । पर लोगों के आप्रह पर वह जन्मकुण्डली एक सन्यासी को दिवाने ले गये । सभी का ऐसा विश्वास था कि वह सन्यासी पहुँचे हुए सिद्ध पुरुष हैं ।

जन्मकुण्डली देखकर सन्यासी बोले—“मैंने अच्छी तरह से इस जन्मकुण्डली को देखा है, यह जन्मकुण्डली जिसका भी है क्या आप उसका दर्शन करा सकते हैं, पण्डितजी ?”

ब्राह्मण घर वापस आकर बालक को गोद में लेकर पुनः सन्यासी के पास पहुँचे । बालक निहायत ही सुबसूत एवं दुग्धगात लिये हुए था । सन्यासी ने अति श्रद्धा से उस शिशु को सिर से लगा लिया और बोले—“अब समझा, क्यों मैं हिमालय के नेपाल राज्य से होते हुए घूमते-घूमते बांगला देश आ पहुँचा हूँ । इस बालक के चरण और मस्तिष्क की छाया में पड़कर मैं कृतार्थ हुआ, और धन्य है आपलोग भी जो इनके मौन-वाप हैं । भगवान श्री रामचन्द्र और श्री लक्ष्मणजी के जन्म के समय जिन पाँच ग्रहों का योग हुआ था, इनके जन्म के लग्न में भी मैं उन्हीं लक्षणों को देख रहा हूँ । इनके नेत्रों को देखकर मुझे लगा रहा है कि यह होंगे दिव्यजयी महापुरुष, जो कि जगत् उद्धार करने आए हैं ।”

इस ब्राह्मण पंडित व्यक्ति का नाम था श्री दीनानाथ चक्रवर्ती। न्याय के पंडित थे और जगधि था 'न्यायतन्त्र'। फरीदपुर जिला के गोविन्दपुर ग्राम में घर था। परन्तु मुर्शिदाबाद नगर के 'डाहापाड़ा' गाँव में निवास करते थे। इस गाँव का पुरातन नाम 'ब्राह्मण चक्रपाड़ा' था। गंगा के पश्चिम तट पर यह गाँव अवस्थित था। और पूर्वतट पर था बंगाल के स्वाधीन नवार्थों की राजधानी। नवार्थी-काल के ढाका के लोक-गण ब्राह्मण-चक्रपाड़ा में आकर वास करने लगे थे। इन्होंने लोगों के सम्पर्क एवं प्रभाव से इस गाँव का नाम पड़ा 'ढाकापाड़ा' साधारण लोगों की चलती प्राम्थ-भाषा में 'डाहापाड़ा'। दीनानाथ बहरी पर एक टीले के आचार्य थे। यही नहीं, इसके ज्वरान्त भी वे राजा के समान ही एक विशिष्ट व्यक्ति के सभा पंडित भी थे। इसी कारण-वश वे 'डाहापाड़ा' में रहा करते थे, साथ में थी उसकी पत्नी वामा-सुन्दरी और शिशु-कन्या कैलाश कामिनी।

सन्धासी से मिलकर घर बापसी के दौरान रास्ते में उन्हें एक स्वप्न का स्मरण हो आया। जिस दिन बालक का जन्म हुआ था, उसी दिन रात को वामासुन्दरी ने स्वप्न देखा था—कि वे पति-पत्नी दोनों ही गंगा स्नान करके संध्या-पूजन कर रहे हैं, कि उसी समय एक कमल फूल बहते-बहते उन लोगों के पास आता है, वे देखते हैं, उस पद्मफूल के बीच में एक स्वर्णीय-वर्ण बाला बालक सोया हुआ है। स्वामी शिशु को हाथों से उठाकर उसे पत्नी के गोद में डाल देते हैं जिसे वामासुन्दरी अपने कलेजे से लगा लेती है। साथ ही स्वप्न भी भंग हो जाता है। किंतु उस स्वप्न की खुमारी और प्रभाव मोर तक रहा। उसी अवधि

के अन्तर्गत वामा सुन्दरी ने इस पुत्र को जन्म दिया था। बंगाल सम्बत् १२७८ के सीता नवमी, १६वर्ष वैशाख और शुक्लवार का ब्रह्मसुहृत् था उस समय। प्रातःकाल के समय कीर्तनकारों का दल गली-गली में टहलते हुए कीर्तन कर रहा था। मोर में जिसे गंगा-स्नान करने का अभ्यास था वे लोग बाट पर खड़े होकर स्तुति कर रहे थे, ऐसे शुभ लन में ही शिशु का अविर्भाव हुआ था। वामा सुन्दरी बालक का मुख देखकर बोल पड़ी—“यह क्या! स्वप्न में देखे बालक की ही प्रतिछवि है यह तो। उसी प्रकार का स्वर्णीय वर्ण तीखे-तीखे नयन, तीखे नाक, संसृत शरीर जैसे थुले हुए आइने के समान चमक रहा है।” पुत्र को देखकर दीनानाथ ने सोचा—“चन्द्रमा के ज्योत्सना को एकत्रित करके बना हुआ है क्या यह सोने का खिलौना? या स्वर्ग से लाकर कोई इसे हमारे घर में फेंक गया है?”

कुछ माह परचात और एक सन्धासी पथ से जाते-जाते, दीनानाथ के पुत्र को घर के दालान में शुटून चंलते हुए देखा तो कह उठे—“इस शिशु के दौर में महापुरुषों के समस्त चिह्न ही व्याप्त हैं। ये तो योगियों का राजा हैं।”

सन्धासियों की बातें सुनकर भी माँ-बाप पुत्र को अपने सन्तान होने के अतिरिक्त और कुछ न सोच सके। कुछ वर्ष पूर्व वे एक सन्तान को अकाल के गर्भ में खो चुके थे। उसी खोये हुए निधि के प्रति उनके हृदय का दबा हुआ स्नेह इस बार पानी के ज्वार के समान उछला जाता था।

—२—

छः माह की आयु में दीनानाथ के पुत्र का अभिप्रायन हुआ । तब उनका नाम रखा गया 'जगत-बन्धु' जगत, बन्धु, बन्धुसोना, बन्धु-गोपाल, बन्धु-सुन्दर सभी लोग उन्हें इन्हीं नामों से ध्यार से सम्बोधित करते थे । इन नामों में भी सबसे प्रचलित हुआ 'बन्धु' और 'बन्धु-सुन्दर' ।

अपने इस ध्यारे और दुलारे लाल को चौदह-माह की अवस्था में छोड़कर माँ बापासुन्दरी ने इस संसार से विदा लिया । दीनानाथ के बड़े भाई भैरव चक्रवर्ती, अपने गाँव पर ही रहा करते । वे 'ढाहापाड़ा' आकर इन मात-मुख से वंचित भाई बहन को गोविन्दपुर के घर लेकर चले गये । भैरवचन्द्र की पत्नी रासमणि माँ के समान ही ध्यार करते हुए उन्हें गोद में उठा लिया ।

बड़ी माँ के गोद में जगत बन्धु को आठ माह भी नहीं हुए थे कि उनकी दीदी कैलाशकामिनी की मृत्यु हो गयी ।

ऐसी विकट परिस्थिति में भैरवचन्द्र पर और एक विपद आ उपस्थित हुई । उनका गोविन्दपुर का घर पद्मा नदी में डूब कर बह गया । तब उन्हें कुछ दूर दृढ़कर नव-गोविन्दपुर ग्राम में परिवार बसना पड़ा था । किन्तु उस संसार को गृह-लक्ष्मी रासमणि ने कुछ दिन के पश्चात् ही हमेशा के लिये इस संसार से विदा लिया । जगत-बन्धु की अवस्था उस वक़्त तीन वर्ष की थी ।

इसके बाद जगत-बन्धु को अपने संरक्षण में लिया भैरवचन्द्र की बड़ी कन्या दिगम्बरी देवी ने । अन्धायु में ही विधवा होने के कारण वह पिता के यहाँ ही रहती थी । दिगम्बरी देवी ने अपनी ममतामयी

आंचल के तले एक साथ ही अपनी पुत्री और चचेरे भाई को आश्रय दिया ।

—३—

समय के साथ जगतबन्धु चलना सीखते हैं । मुख से भी आवाज एवं अस्पृष्ट बातें पृष्ठती हैं । दालन में उतर कर, हाथों से ताली बजाकर नाचते हैं और 'हरि-हरि' बोलने के प्रयत्न में अपनी तोतली भाषा में कहते हैं—'हयि-हयि' । दिगम्बरी देवी एक छोट्टा सा ढोल और करताल खरीद देती हैं । जगतबन्धु अपने साथियों के साथ मिलकर वही करताल बजाते हैं और नाच-नाच कर तुलनाते हुए गाते हैं—

‘दगा-भाधा पायी छिय, हयि-नामे तये गेय ।’

चलते-चलते दौड़ना सीखने के पश्चात् तो जैसे उन्हें सम्भालना भी एक, दायित्वपूर्ण कार्य हो जाता । क्योंकि नदी पार ही घर था, वे दौड़कर नदी की तरफ जाते, घाट पर नौका देखते तो उस पर सवार हो जाते और नौका के बंधन को खोलकर नदी में नौका-विहार करने लगते । दिगम्बरी देवी हाथ-हाथ करती हुई, भागती हुई जाती पर फिर भी उनकी शरारत को रोक नहीं पाती । कभी-कभी तो श्मशान में जाकर शवस्थल पार ही सो रहते । अतः उनके वद्रमशियों का कोई अन्त न था ।

पाँच वर्ष की आयु में जगतबन्धु के हाथ में खड़िया दिया गया । दीनानाथ उस दौरान घर आये हुए थे और कार्य समाप्त कर वे पुनः ढाहापाड़ा चले गये । उधर पिता गये और इधर पुत्र पिता के बिछोह में रो-रोकर अस्थिर हुआ जा रहा था । बालक का रोना चालू रहा तीन दिन और तीन रात तक । कोई समझ नहीं पाता था कि बात क्या है ?

तीन दिनों के पश्चात् डाहपाड़ा से दुबद्व समाचार आया कि 'दीनानाथ न्याय-रत्न' अब इस संसार में नहीं रहे।

भार्ई के बिछोह से दुःखी भैरवचन्द्र का पुनः एक अन्य कठिनाई और परेशानी से सामना हुआ। पुनः उनका नवगोविन्दपुर का घर पदमानदी में बह गया। उन्होंने जल्दी-जल्दी कुछ दूर पर 'ब्राह्मण-कान्दा' ग्राम में नया घर बनाया। इसके उपरान्त वे कुल सात महीने मात्र ही ज. वित रहे।

भैरवचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् परिवार का भार आ पड़ा उनके दो पुत्र गोपालचन्द्र और तरिणीचरण के ऊपर। वे जगत-बन्धु को बहुत ही ध्यान करते। अब उन्होंने बड़े यत्न के साथ जगत-बन्धु के लिखने पढ़ने की व्यवस्था किया। सर्वप्रथम तो उन्हें गाँव के पाठशाला में ही भर्ती किया गया। उसके बाद उन्हें भेजा गया नदिया जिला के आलमपुर गाँव के विद्यालय में। उस स्थान के पश्चात् उन्हें बापस लाकर भर्ती किया गया 'फर्दपुर' बंगला स्कूल में। बंगला स्कूल के पश्चात् उनके पढ़ने की व्यवस्था हुई फर्दपुर जिला स्कूल में, फिर राँची स्कूल। राँची से होते हुए पढ़ने गये पावना स्कूल में। मगर उस स्कूल को भी छोड़कर आना पड़ा राँची में। उस स्कूल के पश्चात् जगत बन्धु को उच्च माध्यमिक की परीक्षा देने का बात थी, इसलिये परीक्षा की शुल्क भी दिया जा चुका था। परन्तु परीक्षा देने के समय कहाँ थे जगतबन्धु? उनको राँच में नहीं खोजा जा सका।

—४—

ये जो शीघ्रतापूर्वक विद्यालयों का फेर-बदल होता था उसके भी

कुछ कारण थे। ग्राम का पाठशाला की शिक्षा अल्प दिनों में ही सम्पूर्ण हो चुकी थी। आलमपुर स्कूल 'ब्राह्मणकान्दा' से काफी दूरी पर था। वहाँ एक रियेक्टर के घर में जगतबन्धु को रहना पड़ता था। दीदी दिगम्बरी उनको अपने से दूर नहीं रखना चाहती, इसलिये उनको फरीदपुर ले आया गया। फरीदपुर बंगला स्कूल में जो कक्षाएँ थी वे तीन वर्ष में ही समाप्त हो गयी थी। फरीदपुर जिला स्कूल में पढ़ते समय तेरह वर्ष की उम्र में जगतबन्धु का जनेऊ संस्कार हुआ। गले में जनेऊ पहण करते ही उनके आचार-व्यवहार में परिवर्तन दिखाई दिया। पहले भी वे बेकार की एवं भूठी बातें बोलना पसंद नहीं करते थे, और अब तो अनर्गल एवं अनर्थक बातें भी करना बंद कर दिये।

ब्रह्मचारी के जिस व्रत का पालन उन्हें 'जनेऊ संस्कार' अवसर पर करना पड़ा था, उसी व्रत की रक्षा जीवन भर करते रहने की प्रतिज्ञा उन्होंने ली। तीन बार स्नान करना, नियमित संध्यापूजा, स्वयं के ही हाथों बना खाना ही पहण करना, दूसरों के कपड़े, बिस्तर यहाँ तक कि सोने का कमरा भी व्यवहार न करना, इसके अतिरिक्त साधु-सज्जनों, देव-संघिनों को दैविक विमुख हो उनपर समर्पित हो जाना—ये समस्त कर्मप्रणाली उनके विशिष्ट कर्तव्य के अन्तर्गत आते थे।

अल्पायु में ढोल कसताल बजाकर साधियों के साथ हरिनाम करते-करते, वे लोग जो खेल खेला करते, वही अब उनके जीवन का सार बन चुका था। पोषक-परीधान का आडम्बर उन्हें बिल्कुल भी पसंद नहीं था। अब वे धोती के अतिरिक्त मात्र एक सफेद चादर ही धारण करके घूमते-फिरते थे। वे अपने वस्त्र अपने आप ही धो लेते थे।

धोती का किनारा भूल से भी दूसरी तरह न जा गिरे इसलिये वे उस तरफ एक गिरह या गाँठ बाँध दिया करते थे।

(५)

पाठशाला जाने में कोई बाधा नहीं था, परीक्षाफल भी अच्छा ही होता था। परन्तु पढ़ते-पढ़ते या फिर चलते-फिरते जगत्बन्धु उदास दृष्टि से तटस्थ हो, एकटक शुन्य में ताकते लगते। उनके इस भाव को देखकर राहगीरों के मन में भी स्नेह-शक्ति-भाव का उदय होता। कुछ लोग तो उनको अपने घर में बुलाकर खाना-पीना भी दिया करते।

घर पर जगत्बन्धु ने स्वयं ही राधा गोविन्द की पूजन का भार ले लिया। पूजन के समय वे सिर्फ 'गोविन्द' 'गोविन्द' बोलकर ही अंजली दिया करते। गोविन्द के साथ 'राधा' का नाम उच्चारित करते समय न जाने कैसे बिह्वल हो उठते।

ऐसी ही अवस्था में जगत्बन्धु की पढ़ाई जिला-स्कूल में आरम्भ हुई। वर्ष के अंत में परीक्षा देते समय उनके मन में न जाने किस दिव्य भाव का उदय हुआ, वे तटस्थ हो निर्विकार रूप से एकटक शुन्य में देखते रहे। विद्यालय के प्रधानाध्यापक महाराय के मन में संदेह हुआ कि अवश्य ही वे दूसरे की उत्तर-पुस्तिका की नकल करने के प्रयत्न में हैं। फलस्वरूप उन्हें परीक्षा नहीं देने दिया। जगत्बन्धु के परीक्षा-भवन से निकल जाने के पश्चात् उनके उत्तर-पुस्तिका का पन्ना पलटकर देखा गया तो प्रधानाध्यापक को अपने भूल का अहसास हुआ। वे जगत्बन्धु को परीक्षा देने हेतु स्वयं ही बुलाने दौड़ पड़े। पर भला उस समय और उनको खोज ही कौन सकता था ?

कलकत्ता में दिगम्बरी देवी की लड़की क्षीरोदासुन्दरी का विवाह हुआ था। जगत्बन्धु उस घटना के पश्चात् स्कूल से बाहर ही बाहर होते हुए कलकत्ता में क्षीरोदासुन्दरी के रक्षसुर के घर जा उपस्थित हुए। इधर उनके न मिलने से जैसे घर में हंगामा सा खड़ा हुआ था। बाद में क्षीरोदासुन्दरी का पत्र पाकर उन्हें बापस घर लाया गया। किन्तु पुनः जिला स्कूल में पढ़ने के लिये सहमत नहीं हुए।

भैरवचंद्र के पुत्र तरिणीचरण राँची में नौकरी करते थे। उन्होंने जगत्बन्धु को अपने पास बुलाकर उन्हें राँची-स्कूल में भर्ती करा दिया। तरिणीचरण के घर में अन्य कोई परिवार के सदस्य नहीं रहते थे। नौकर चाकर के ऊपर ही घर संसार का भार चलता था। नौकरों को चोरी करने की आदत थी। जगत्बन्धु के घर पर रहने से नौकरों को चोरी करने में परेशानी और असुविधाएँ होने लगीं। एक दिन उन्होंने जगत्बन्धु के भोजन में विष मिला दिया। पर संयोगवश समय से तरिणीचरण घर पहुँच गये और अपने भाई के प्राणों की रक्षा की। खाना बनानेवाला रसोईया तो पहले ही भाग चुका था। तरिणीचरण नौकर को सजा देने का संकल्प कर चुके थे। परन्तु जगत्बन्धु ने भाई को नियत जान, बाधा देते हुए कहा—“भैया, चोर को सजा देने से उसे उचित शिक्षा नहीं मिलती, उसकी वास्तविक शिक्षा होगी पारचाताप से। उसे क्षमा करके छोड़ दीजिये। उसी से उसके मन में अनुताप होगा और शिक्षा मिलेगी।” भाई के कथन पर तरिणीचरण ने नौकर को छोड़ तो दिया पर खाली घर जगत्बन्धु को पुनः रखने का साहस नहीं जुटा पाये।

अतः जगतबन्धु को 'पावना' भोजना पड़ा। वहाँ दिगम्बरी देवी की ब्रौटी बहना गोलकमणि देवी का विवाह हुआ था। उनके प्रवसुर के घर में रहकर जगतबन्धु पावना स्कूल में पढ़ना आरम्भ किये।

मध्य पर्व

पावना में अध्ययन तो आरम्भ हो ही गया किन्तु हर समय जगत-बन्धु का अनमना भाव, मन जैसे किसी अनदेखे और अनजाने राज्य में ही विचरण करता रहता था। हरिताम करने का प्रबल आग्रह, कीर्तन सुनने की प्रबल इच्छा एवं साध से वे ओत-प्रोत रहा करते, किन्तु 'हरिबोल-हरिबोल'—शब्द या कर्तन के पद सुनते ही वे दिग्भ्रमित हो जाया करते थे। पहले उनका सिर हिलने लगाता फिर खड़े होकर नाचते-गाते वे अचेतनावस्था में गिर पड़ते। तब भी उनका समस्त शरीर ही भूमता और डोलता रहता, दोनों नेत्रों से अश्रुओं की धारा सी बह निकलती, रोम-छिद्र में रक्त की बूँदें दिखाई देती, मुख से म्हाग निकलने लगता। ऐसी अवस्था में कभी-कभी उनके श्वास की प्रक्रिया भी बंद हो जाती।

कीर्तन के अतिरिक्त 'यात्रा-गान' या 'नृत्य-नाटिका' देखने-सुनने का भी जगत्बन्धु को शौक था। एक दिन नृत्य-नाटिका में प्रह्लाद-चरित्र देखने गये। प्रह्लाद के मुख से यह गीत सुनकर—

“आर कबे देखा पावो गुगलरूप एकासने”

अर्थात् प्रभु के इस गुगल रूप का दर्शन पुनः कब पाऊँगा।

सुनते ही वे काँपते-काँपते बेहोश होकर गिर पड़े। कुछ दिनों के पश्चात् पावना के इच्छामती नदी में स्नान करते समय यही गीत एक बाल-बालक को गाते हुए सुना और सुनते-सुनते मुर्छित हो पानी में गिर पड़े। अन्य जितने भी लोग घाट पर थे, जलद, जलद उन्हें उठाकर किनारे ले आये। परन्तु उन्हें होश में लाने का उनका सारा प्रयत्न विफल रहा। वहाँ एक वैष्णव-बाबा जी भी उपस्थित थे। उन्होंने कहा—“ये भाव-निमग्न हो गये हैं”—ये कहते हुए स्वयं ही ताली बजाकर 'हरि बोल-हरि बोल' का उच्चारण करने लगे। इच्छामति के तट पर तब हरि नाम की गूँज उठने लगी। साध हा जगत-बन्धु धीरे-धीरे आँखें खोलने लगे उस अवस्था में भी भाव-निमग्नता में उनका सिर भूमता जा रहा था। सभी उनको पकड़ कर घर तक ले आये।

पुनः एक दिन वे इच्छामती नदी में अपने मित्रों के साथ नौका विहार कर रहे थे उस समय भी इसी प्रकार की एक घटना घटी। उनके मित्र आनंदित हो 'जय-राधे' 'जय-राधे' को गुहार लगाने लगे। जगत-बन्धु सुध हो भूमते-भूमते नदी में जा गिरे। उनको बड़ी मुश्किल से नदी के तट पर लाया गया, और अत्यंत परिश्रम के पश्चात् ही उन्हें होश में लाया जा सका।

शहर के एक बड़े घर में 'ध्रुव चरित्र' नाट्य-गान होने वाला था। इस समाचार के मिलते ही जगत्बन्धु वहाँ जा पहुँचे। नाटक के अंश में ध्रुव आकर जैसे ही भगवान के नाम को गुहार लगाते हैं—“कोशाय पद्म-पल्लव लोचन हरि”—अर्थात् मेरे पद्मपल्लव के समान नेत्रों वाले हरि कहाँ हैं—सुनते ही जगत बन्धु काँपते-काँपते अचैतन्य हो गिर

पड़े। वहाँ एक नौजवान डॉक्टर उपस्थित थे। उन्होंने कहा—“इन्हें मिगी रोग हुआ है।” रोग की जाँच-पड़ताल करते समय डॉक्टर ने देखा कि रोगी के शरीर में कोई स्पन्दन नहीं है, हाथ की नाड़ी की गति भी बन्द। डॉक्टर महोदय रोगी की दशा देखकर चिकित्सा करने का अपना साहस खो बैठे। परन्तु रोगी का स्पर्श कर वे स्वयं ही एक अद्भुत परन्तु सार्विक भाव से ओत-प्रोत हो गये। उनकी तत्काल इच्छा होने लगी कि वे ‘हरि बोल-हरि बोल’ गा उठे। यही डॉक्टर बाद में कलकत्ता आकर विशेष प्रसिद्धी पाये थे। इनका नाम था चन्द्रशेखर काली।

जगतबन्धु के इस प्रकार के आचरण एवं भाव व्यवहार को देखकर उनकी दीदी गोलकमणि को बड़ी चिन्ता हुई कि न जाने कब, ऐसी स्थिति में, भाई के प्राण संकट में पड़ जाय। अतः दीदी गोलकमणि उन्हें कीर्तन या नाटिका देखने-सुनने देने से डरती थी। परन्तु घर में आखिर उन्हें रोक कर रख भी कौन सकता था? दरवाजे पर किसी बैरागी के ‘हरे-कृष्ण’ अथवा ढोल करताल बजाते सुनकर ही जगत बन्धु ईश्वर प्रेम से ऐसे भर उठते थे कि सुध-बुध खो भूमि पर लोट-लोट जाते थे।

—२—

एक तो जगतबन्धु पहले ही ‘हरिनाम’ के दीवाने थे उप पर पाबना में आकर उनके मन के अनुरूप ही एक संगी-साथी भी मिल गया, जो स्वयं ही ‘प्रभु’ का दीवाना था। लोग उस पागल को कहते थे ‘हाराण-खैपा’ अर्थात् ‘विश्विम व्यक्ति’। परन्तु उनका वास्तविक परिचय कोई

नहीं जानता था। वह पागल व्यक्ति अपने आँखों देखी या जानी-सुनी ऐसे ऐसे लोगों के बारे में बताते, जिससे ऐसा प्रतीत होता कि जैसे वे अत्यंत बुजुर्ग और दादा परदादाओं के समय के व्यक्ति हैं। इस ‘हाराण खैपा’ का वास स्थान या तो कोई दूटा मंदिर होता था या किसी टूटे फूटे घर का अंथकारपूर्ण, संढ़, का नीचला हिस्सा। वहाँ फटे पुराने कपड़े पहन कूड़े करकट के पास पड़े रहते।

जगतबन्धु एक दिन उनके यहाँ जा उपस्थित हुए। उन्हें देखकर ‘हाराणखैपा’ ‘जगारे.....जगारे’ कहकर नाचने लगे। जगतबन्धु उन्हें ‘बूढ़े-शिख’ के नाम से सम्बोधित करते। खैपा भी जगत बन्धु को कहते—“जगा मेरे देश का है जगा साधारण मनुष्य नहीं है साक्षात् गौरांग महाप्रभु।” लोगों के यहाँ भी वे कहते-फिरते थे—“जगा हो हमारा राजा है और हम सभी उसकी प्रजा हैं।” जगत बन्धु स्वभाव से ही पवित्र, परिष्कृत और परिच्छन्न रहने के अभ्यस्त थे। लेकिन हाराण खैपा के पास आते ही उनकी ये आदतें छूट जाया करती थीं। वे हाराण खैपा के गन्दे बिस्तर पर लेट कर गले में बाँहे डाले रहते थे। तब दोनों ही मिलकर न जाने क्या-क्या गुपगुप कानाफूसी किया करते। लोग ‘हाराण खैपा को सिद्ध पुरुष के रूप में मान्यता देने लगे थे क्योंकि अनेक लोग कई बार उनकी सिद्धि को प्रमाण पा चुके थे। किन्हीं-किन्हीं लोगों की ऐसी धारणा थी कि शांतिपुर के अद्वैत-गोसाईं का देहावसान नहीं हुआ है और वे हाराण खैपा के छद्मवेश में अभी भी सरारिर विद्यमान हैं। अतः खैपा जिसे स्वयं गौरांग बोल दे उसी गौरांग के साथ उनका अभिन्न प्रेमाधिक्य के प्रतीक स्वरूप गले-मिलने में वैचित्र्य कैसा?

—३—

जगत-बन्धु की गाथा पावना शहर में पूर्णतया व्याप्त हो गया। तब वहाँ के लोग दलों के रूप में उनसे मिलने के लिये आने लगे। ऊन्हीं लोगों के साथ आने लगे विद्यालयों के छात्रगण। जगत-बन्धु अपने आचार-व्यवहार से पक्के ब्रह्मचारी थे। जो कोई भी उनके सम्पर्क में आता, उसको वे यही संदेश देते—“ब्रह्मचर्य का पालन करो, और दूसरों को भी प्रेरित करो।” स्वयं सदैव ही सर्वरूपेण सत्य का पालन करते थे। लोगों को कहा करते “तुम लोग सदैव ही सत्य बोलो, कभी भी मिथ्या वचन न बोलो। यदि जीवन संकटापन्न हो तब भी असत्य का पालन नहीं करोगे, जो कोई भी सत्य के पथ का अनुगमन करता है उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।” स्वयं निर्भीक हो निष्ठापूर्वक धर्म का पालन करते और और लोगों से कहते—“तन, मन और प्रण द्वारा जहाँ तक हो सके धर्म को रक्षा करना उचित है। धर्म की रक्षा में यदि विपत्तियाँ भी आवे या प्राणों का उत्सर्ग भी हो तो अहो भाग्य है क्योंकि धर्म ही कृष्ण है।” अहिंसा और संयम को जीवन का अलंकार बताते हुए कहते “जीव की हिंसा से मानव की उन्नति कभी भी सम्भव नहीं। तुम किसी को भी चोट न पहुँचाओ। प्राणी मान को तुम कष्ट न दो। किसी के प्रति भी कटु, अप्रिय या दृष्टिगत वचन का प्रयोग मत करो। पर निन्दा न सुनो और न ही मन में उसे स्थान दो।” प्रातः नित्य-क्रिया से निवृत्त होने से ले कर रात्रि शयन तक का उनका कार्यक्रम पूर्णतया नियमबद्ध था। दूसरों को भी अनुशासन और नियमबद्धता का पालन करने को वे प्रेरित करते रहते। जहाँ तक

निरुपेक्ष भाव से कार्यक्रम हो सके इसके लिये ही वे उपदेश देते—‘समस्त कार्य ही ईश्वर से प्रेरित, ईश्वर को ही समर्पित जानकर करना चाहिये। परिणाम की इच्छा नहीं रखनी चाहिये। परिणाम का होना हरि इच्छा पर निर्भर करता है।’

छात्रों को विद्यार्जन हेतु कहा करते। किसी को भी सन्यास ग्रहण करने को नहीं कहते। पुनः कहते—“तुमलोग अज्ञानी बनकर मत रहना क्योंकि अज्ञान से प्रभु प्राप्ति नहीं होती। सभी लोग दिन-रात अध्ययन में निमग्न रहा करो। कोई भी स्नातक हुए बिना अध्ययन में विराम न लगावे। शिक्षा की उच्चतम श्रेणी को प्राप्त कर हाकिम बनो। परीक्षा समाप्ति पर्यन्त तुम अकेले ही रहो।” सत्य को सर्वोपरि समझते हुए वे छात्रों से कहते—“यदि ज्ञान पर भी आ पड़े तब भी असत्य नहीं बोलना, क्योंकि सत्य का पालन करने वाले का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।” व्यर्थ की बातों में समय व्यतीत न करने पर जोर देते हुए छात्रों को सन्तोषित करते—“बेकार की बातों में न पड़कर, व्यर्थ की कामों में न संलग्न होते हुए, तुम सभी प्रभु के नाम का प्रचार और प्रसार करो, क्योंकि ईश्वर की भक्ति ही जीवन का प्रधान लक्ष्य है, उसी लक्ष्य या साध्य की प्राप्ति का साधन विद्या है।” मानव-जीवन के मूल सुख त्याग के विषय में हरेक प्रकार से समझाते। किसी की बातों या क्रियाकलापों में अनमना भाव पाकर कहते—“जो कहो उसे करो।” अच्छा, देखते हैं, यदि सम्भव हुआ तो कार्य करने का प्रयास करूँगा—“यह कथन अरोग्यनीय और गलत है। जो कहते हो यदि तुममें उसको करने की नितांत इच्छा है तो उसे अवश्य ही कर सकोगे।”

एक बार छात्रों द्वारा ब्रह्म-समाज की उपासना के विरोध में आलोचना सुन वे कह उठे—“छिः, तुम समाज में, चर्च में, मरिजद् में जाकर ऐसी निंदा मत करो। निन्दा महापाप है। सबमें ही प्रभु की छवि देखो और सबको ब्रह्म स्वरूप मान सम्मान देना। समाज, चर्च, मरिजद् में जाओ, परन्तु तुम्हारा लक्ष्य स्थिर होना चाहिये।”

एक बार बहुत से अंग्रेज पादरी ईसाई धर्म के प्रचार और प्रसार के लिये इस देश में आये और अपने ईसाई धर्म की महत्ता बताते हुए हिन्दू-धर्म की मूर्ति पूजा पर अपने कृतिसत विचार प्रगट किये। उसके प्रतिपाद में जगतबन्धु के एक रिस्य ने ईसाई धर्म और अंग्रेजों की निंदा करते हुए एक प्रबंध की रचना की। यह जानकर जगत् बन्धु उस रिस्य से बोले—“अंग्रेजों के चरित्र की महत्ता से तुम शिक्षा ग्रहण करो, उनके दोषों और अवगुणों से घृणा कर, उनसे प्यार करो। तुम लोग अपने आपको पराधीन समझकर उनके दोषों को ग्रहण करते हो और उनको महत्ता की ओर तुम्हारी दृष्टि ही नहीं जाती।” वे सबको ही कहा करते—“हमेशा के लिये मन में प्रसन्नता को स्थान दो। किसी भी कारण से मन में खिन्नता या विषाद का होना उचित नहीं। किसी के द्वारा की कोई प्रशंसा से उत्तेजित, अह्लादित या गौरवान्वित और निंदा से निरुत्साहित या दुःखी होना उचित नहीं।”

इसके साथ ही उनसे ये बातें भी सुनी जाती—“बिना किसी अहम के सबको हों प्रणाम करो, हृदय में पवित्रता को रखो, ‘सरल मन से निष्ठापूर्वक हरिनाम लेते रहो’, ‘प्रत्येक प्राणी में हरि का स्वरूप देखो’, ‘भार स्थाकर भी किसी को मत भारो’, ‘त्याग में ही सुख है’, ‘प्रेम-

मायुर्धु का विकास आत्मगोपन से होता है, तुम सभी आत्मगोपन करते प्रभु की दिशा की ओर अप्रसर होओ।” उक्त वाक्य उनके नित्य के वचनों और उपदेशों के अन्तर्गत आते थे।

लोगों के स्वभाव को परख कर जगत्बन्धु किसी-किसी को कहा करते—“गृहस्थ बनो, सांसारिक बनो, परन्तु निष्ठावान रहो। माता-पिता के हृदय को कष्ट मत देना। जिसे इसमें शांति नहीं उसे संसार त्यागने पर भी शांति नहीं मिलती। माता और भाई-बन्धु का सदैव स्थान रखो।” और किसी को कहते कि चिर कुमार बनो, विवाह करके भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करो।

इन सभी उपदेशों को देते समय जगत्बन्धु की दृष्टि देश के कल्याण की ओर लगी रहती। वे कहते—“लोगों को चाहिये कि नौकरी का त्याग कर कृषि की ओर ध्यान दें। देश में प्रचुर फसल हो। सभी सुख-शांति से रहें और हरिनाम करें, इसी का नाम स्वाधीनता है।”

कभी भी और कहीं भी वे जो कुछ भी उपदेश देते उसके मूल में यही संदेश रहता—“और कुछ करो या न करो पर हरिनाम कदापि न छोड़ना।” हरिनाम के कीर्तन के प्रति उनकी आसक्ति इतनी तीव्र थी कि वे छात्रागण को कहते—“तुम अगर मुझे छः माह भी खाने को न दो तब भी मैं नहीं मरूँगा, परन्तु याद रहे कीर्तन के अभाव में एक मुहूर्त के लिये भी मैं बच नहीं पाऊँगा। क्योंकि कीर्तन ही मेरा जीवन है।” “तुमलोग कीर्तन के अतिरिक्त किसी नियम या व्रत को ग्रहण मत करना, हमेशा ही कीर्तन के प्रति समर्पित रहना। कीर्तन के अतिरिक्त सभी मिथ्या है।” “इस जीवन से उद्धार और मुक्ति पाने का

एक मात्र साधन हरिनाम रूपी महामंत्र है।” “तुम देश के कोने-कोने में हरिनाम का प्रचार करो और दूसरों को भी करने के लिये प्रेरित करो।” “कोई हरिनाम का जप करे या न करे उससे तुम प्रभावित न होना बिना किसी प्रकार का विचार किये ही तुम जहाँ-तहाँ हरिनाम का प्रचार करना। क्योंकि हरिनाम सुनने मात्र से प्राणी का कल्याण होगा।” प्रभु जगत्बन्धु के मतानुसार हरिनाम की शक्ति असीम है क्योंकि हरिनाम करने से केवल मात्र ईश्वर का ही नाम नहीं लेते बल्कि एक साथ गुरु, गौरांग, गोपी और राधे-श्याम का नाम भी लेते हैं। जगत्बन्धु स्वयं हरिनाम सुनकर भूम जाया करते। किसी को कहते—“हरिनाम का प्रचार करो, घर-घर में जाकर कीर्तन करो और करवाओ सभी को हरिनाम सुनाओ। ब्रोंटे-ब्रोंटे में अन्तर न देखो। सांसारि व्यक्ति को हरिनाम करने का अधिक अधिकार प्राप्त है। समय रहते ही हरिनाम कर लो। तुम सभी मिलकर मेरा कार्य करो।” अपने मनोमुक्त हरिनाम का प्रचार न होता देखकर वे आक्षेप भी करते—“हाय ! मनुष्य हरिनाम नहीं लेता, किन्तु क्षणभंगुर जीवन है उसका, अभी है—अभी नहीं। सांसारिक व्यक्ति की आसक्ति संसार में लगी हुई है जो कि माया है, इससे उसकी दृष्टि की पिपासा नहीं मिटती, वह हरिनाम क्यों नहीं करता ?”

“स्वयं धर्म आचरण करके दूसरों को सिखाना”—जगत्बन्धु के कथनी और करनी में इस नीति का समावेश पाकर सभी मुग्ध थे। ब्रजवर्ग भी धर्म के नाम पर मस्त हो उठे थे। जिसके कारण उनके अभिभावकाण काफ़ी भयभीत हो उठे। उनकी धारणा थी कि यह

सर्वनाश का द्योतक है और सम्भवतया छात्रों का सन्यास और वैराग्य की ओर आकर्षित होने का लक्षण। अतः जगत्बन्धु को इस सर्वनाश का जड़ समझा जाने लगा और उनके विरुद्ध सभी एकजुट होने लगे।

जगत्बन्धु नित्य ही स्नान के लिये इच्छामती नदी में जाया करते थे। एक दिन जब वे स्नान कर रहे थे, कुछ लोग अचानक उनको पकड़ कर नदी में डूबाने लगे। वे किसी प्रकार बचते बचाते, हाँफते-हाँफते दीदी गोलकमणि के पास आ पहुँचे। उस समय दीदी गोलकमणि शिव की आराधना कर रही थी। भाई की व्यथा सुनकर उनके नेत्रों से आँसुओं की अविरल धारा बह निकली। यह देखकर जगत्बन्धु बोले—“दीदी, यह क्या ? शिवपूजन के समय आपको आँखों में आँसू ? इसे बहने न दो दीदी, रोक लो इसे अन्यथा शिवलिंग पर टपके तुम्हारे ये आँसू जनलों के लिये अमंगलकारी सिद्ध होगी।” जगत्बन्धु यहाँ ‘उनके लिये’ का सम्बोधन उन व्यक्तियों के लिये किये हैं जिन्होंने उन्हें डूबाने का प्रयास किया था।

सुबह उठते ही जगत्बन्धु की प्रातः भ्रमण करने की आदत थी। एक दिन प्रातः भ्रमण के समय कुछ अज्ञात लोग उनको अकेले पाकर भारते भारते अचेतवस्था में पास के जंगल में ब्रोंड भाग गये। शहर का चौकीदार रात्रि में पहरा देकर उसी मार्ग से वापस लौट रहा था। उनको पहचानकर उसने गोलकमणि के समुराल बालों को सूचना दी। तब उन्हें उठाकर, सम्भालते हुए घर को ले जाया गया। इस घटना के उपरान्त सभी लोग इसके संदर्भ में जगत्बन्धु से जिज्ञासा करने लगे—जिन बदमाशों ने उनपर हाथ उठाने का दुःसाहस किया है, उनको

पहचानते हैं कि नहीं ? और यदि पहचानते हैं तो उनके नाम क्या है ।

जगत्बन्धु यों तो सबको पहचानते थे, परन्तु उनका परिचय बताने को तैयार नहीं हुए और हैंसते हुए कहा—“मैं दण्डदाता नहीं, उद्धारकर्ता अवश्य हूँ ।” इनके इन बातों को सभी समझ गये—कि उन पर शासन करने का अधिकार कैसे ? उनका कार्य तो जनपर हिंसा प्रतिबाधन कर, उद्धार भी तो करना है ।

श्री बनमाली राय पावना जिले गणमान्य व्यक्ति और जमींदार थे । उनके वंश की उपाधि ‘राजा’ थी । चलते फिरते भी थे राजाओं की तरह अकड़ और शान से । एक दिन वे हाथी पर महावत के साथ पावना शहर की सड़कों से गुजर रहे थे । तभी उनकी दृष्टि दूर से कीर्तन करती चली आ रही मंडली के बीचोबीच एक अपूर्व सुन्दर तरुण के ऊपर पड़ी । वह क्रिशोर दोनों हाथों को ऊपर किये हुए सिर हिला-हिला कर भजन में लीन था । उसके गालों पर आँसुओं की धारा बह रही थी । इस दृश्य को देखकर राजा बनमाली राय मुग्ध हो उठे । उनके मन में अतीत की एक गीत कड़ी याद हो आई—“पूई जे सोनार मातुष जाय चले”—साथ ही साथ गोविन्द दास की एक पंक्ति भी उभर आई—“ढलो-ढलो काँचा अंगेर लावणी, अपनी बहिया जाय ।” वे मन ही मन सोचने लगे कि—यह कंचन काया लिये तरुण कौन है जिसके रूप की अलौकिक छटा से यह मार्ग आलोकित हो उठा है ।

फिर वे हाथी के पीठ पर बैठे नहीं रह सके । नीचे उतर कर कीर्तन दल वालों के समीप जा, जबर्न उन्हें जे उस तरुण का परिचय पाया कि

यही वह जगत्बन्धु है जिनका नाम लोगों के मुख से पहले ही सुन चुका हूँ । यह जान वे आनन्द विभोर हो उठे । भीड़ को चीरते हुए जगत्बन्धु के पास जा, नतमस्तक होकर राजा जी ने निवेदन किया कि आपको मेरे घर को अपनी पदशूलि से पवित्र करना ही होगा ।

अद्वैत गोस्वामी की संतान जमींदार गुरुवंश थे । बनमाली राय अपने गुरुपुत्र रघुनन्दन गोस्वामी को पावना शहर में भेजकर जगत्बन्धु को अपने घर में लाने की व्यवस्था किये । जगत्बन्धु को भी हाथी पर बैठकर महासमारोह में लाया गया । उनको अपने बीच पाकर बनवारी नगरवासी आनंद विभोर हो उठे ।

कई दिनों तक बनवारी नगर वासी इस आह्लाद-प्रमोद में निमग्न रहे । राजा बनमाली राय भाव विभोर हो हाथ जोड़े जगत्बन्धु के द्वारा हरिनाम को सुनते । उनके पास ही बैठकर गोस्वामी रघुनन्दन भी सुना करते । बनमाली राय भक्ति से गद्गद हो, जगत्बन्धु को सम्बोधित किये—‘प्रभु’ । और जगत्बन्धु ने भी प्रेमविभोर हो उन्हें सम्बोधित किया—‘राजर्षि’ । जगत्बन्धु द्वारा उद्घोषित यह उपाधि राजा बनमाली राय के जीवन में उनके मुकुट की तरह अभिन्न रूप से संलग्न रहा । बंगला देश में ही नहीं अपितु वृन्दावन तक में वे इस उपाधि से जाने-माने गये ।

पावना में जगत्बन्धु के ऊपर हुए अत्याचार की कहानी से बनमाली राय भी परिचित थे । एक दिन बातों-बातों में जगत्बन्धु से जानना चाहा कि ऐसे जयन्त्य कार्य को किसने किया था ? जगत्बन्धु हैंसकर बोले—

“पाप रूप हिमाचल शिरोदेशे छिलो ।
लाहिड़ी पवन-वेगे उड़ाईया दिलो ॥”

इसके अतिरिक्त इस संदर्भ में उनसे और कुछ न जाना जा सका ।
रघुनंदन गोस्वामी बनमाली राय से प्रश्न किये—“जगत्बंधु ने पाप कहाँ किया है ? फिर भी उन्होंने ऐसा कहा कि उनके सिर पर हिमालय के समान पाप का बोम है ?” बनमाली राय ने उत्तर दिया—“पाप तो उनका निज का नहीं है । यह तो हमारे जैसे अधम पापियों का संयुक्त बोम है, जिससे हम सभी का उद्धार करने का दायित्व इन्होंने लिया है । यही दायित्व निर्वाह तो इनका कार्य है । इसीलिए जगत्बंधु का कहना है इन्होंने पापों का प्रायश्चित्त लाहिड़ी वंश के किन्हीं लोगों ने कराया है, जिससे और उपकार ही हुआ है ।”

यह व्याख्या सुनकर रघुनंदन को नित्यानन्द प्रभु की एक बात स्मरण हो आई—

—‘मेरेछो कलसीर काना, ताई बोले कि प्रेम देवोना ।’

जिस वंश में ये पैदा हुए हैं उसी के प्रेम में अभिभूत होकर एक दिन स्वयं भावना नदिया जिला में अवतरित हुए थे । उसी नदिया के प्रभु निमाई को जगत्बंधु के रूप में देखकर रघुनन्दन उल्लासित हो गर्व से भर उठे । उन्होंने सोचा—“आज भी गोरंग महाप्रभु लीला कर रहे हैं ।” “इससे बढ़कर प्रत्यक्ष प्रमाण और क्या हो सकता है ?” उसी दिन से गुरुवंश की महत्ता और व्यक्तित्व विलासिता का त्याग कर रघुनन्दन प्रभु जगत्बंधु के शिष्य बन गये ।

पावनाना में जगत्बंधु पर होनेवाले अत्याचार की कहानी तरणीचरण

के कानों में भी पहुंची । वे जगत्बंधु को पावनाना में फिर रखने का साहस नहीं कर सके । वे पुनः जगत्बंधु को अपने साथ लाकर राँची के स्कूल में भर्ती कर दिये ।

राँची में रहकर जगत्बंधु जितना पुस्तक पढ़ते थे उससे अधिक वैष्णव ग्रन्थों के अध्ययन में रुचि लेने लगे थे । सोते समय भी एक ग्रन्थ उनके हृदय पर पड़ा रहता था । वह ग्रन्थ था नरोत्तम ठाकुर रचित ‘प्रेमभक्ति चंद्रिका’ ।

राँची स्कूल के विद्याध्ययन के परचात जगत्बन्धु को माध्यमिक परीक्षा देने की बात थी, परंतु जिसने सरस्वती के पद्ममवन में उनके राजहंस का दर्शन कर लिया है उसे लक्ष्मी के लोभ में, उनके बाहन के पंछे दौड़ने में भला क्या रुचि होगी ।

(४)

स्कूल और साथ ही सारे सन्तन्त्रों को छोड़कर जगत्बन्धु इस बार अपने असली कार्य की ओर ध्यान दिये । वह कार्य था जिसने हिमालय के सन्तानों ने जगत्बन्धु के पिता श्री दीनानाथ न्यायरत्न को बताया था—कि ये इस पृथ्वी पर जगत्बन्धुद्वारा निमित्त आये हैं और जो इनका स्वयं का भी संकल्प था—नाम जपने से ही सारे जगत का कल्याण सम्भव है । यही हरिनाम बाँटते हुए—केवल बाँटते हुए ही नहीं, नाम के प्रभाव से महापाप का प्रलय भी समाप्त किया जा सकता है ।

राँची छोड़कर जगत्बन्धु कुछ दिन इधर-उधर भटकेंगे । उसके बाद पावनाना से होते हुए कलकत्ता आये । पुनः कलकत्ता से अचानक अपने जन्मभूमि डाहापाड़ा आ उपस्थित हुए । डेढ़ वर्ष की अवस्था में उन्हें

माता को खोकर डाहापाड़ा छोड़ अपने गाँव जाना पड़ा था। सोलह वर्ष के लम्बी अवधि के पश्चात् जगतबन्धु अपने जन्मभूमि का दर्शन करने गये। वहाँ पहुँचते ही वे अपना मुँडन कर गंगा स्नान किये। फिर चारों तरफ घूम-फिर कर अपनी जन्मभूमि की चारों दिशाओं की ओर जहाँ वे स्नेहसिक्त हुए थे प्रणाम कर वे अपनी लम्बी निरुद्देश्य यात्रा की ओर चले। उनकी यह यात्रा दो वर्षों तक चलती रही। इस दो वर्ष की अवधि में उनके द्वारा की गई सारी क्रिया कलाएँ अज्ञात हैं। सम्भवतया यह अभियान देश विदेशों के सागर, नदी, पहाड़, वन, तीर्थ स्थल आदि के अन्तर्गत ईश्वर लीला के प्रत्यक्ष रूप की दिखाना रहा है।

दो वर्ष के बाद वे 'ब्राह्मणकान्दा' के घर आये। इसी स्थान पर रह कर उन्होंने हरिनाम का प्रचार एवं प्रसार करना आरम्भ किया। वाक-चर, बदरपुर आदि स्थान जो ब्राह्मणकान्दा के निकटवर्ती स्थानों में से थे, वे ही जगतबन्धु के प्रथम कर्मक्षेत्र बने।

एक बार वाकचर में हैजा का भारी प्रकोप फैला। जगतबन्धु के उपदेश पर घर-घर में अखण्ड कीर्तन होने लगा, जिससे शीघ्र ही हैजा का उत्पात बन्द हो गया।

संसार के गोलमाल से परे पवित्र रूप से रहना जगतबन्धु को पसंद था। ईर्ष्यालिये उनकी दीदी दिगम्बरी ने उनके लिए घर के पास ही एक नया घर बनवा दिया। वाकचर में भी उनके लिए एक आश्रम का निर्माण किया गया। कुछ दिन बाद ब्राह्मणकान्दा में भी एक आश्रम की प्रतिष्ठा हुई। इस प्रकार के आश्रम का जहाँ पर भी निर्माण हुआ है उन जगहों को 'श्री अंगन' नाम दिया गया।

हरिनाम के प्रचार के लिये सर्वप्रथम सात कीर्तन के दल का गठन किया गया। महन्त सम्प्रदाय, वाकचर दल, वाकचर का बालक सम्प्रदाय, ब्राह्मणकान्दा का सम्प्रदाय, ब्वालचामटे का दल, बदरपुर के भक्ताण और चौधरी बाबुओं का दल, धं रे धं रे इस कीर्तन के दल में, स्थान पाने लगे। प्रत्येक दल में दो-दो मृदंग और चार जोड़े करताल हुआ करते थे। समस्त दल प्रतिदिन मिलकर नगर के चारों तरफ घूम कर कीर्तन करने लगे। साथ ही दहल कीर्तन, नौका-कीर्तन, निशा-कीर्तन भी चलने लगा। कभी-कभी तो चौदह दल एकत्रित हो चौबीस घण्टे कीर्तन करते। श्रीकृष्ण लीला के अन्तर्गत गोपियों का कात्यायनी व्रत, वरत्र हरण व रास यात्रा कार्तिक के पहले तारख से लेकर संक्रांति के दिन तक एक मुहूर्त के लिए भी कीर्तन में विराम नहीं लगा था—

“कृष्ण गोविन्दं गोपाल श्याम
राधाभाधव राधिकानाम ॥”

मानो इस महानाम के साथ कीर्तन की उन्च ध्वनियाँ महोरसव की ध्वनि के रूप में भर जाती थी।

जगतबन्धु स्वयं भी कीर्तन-दल के साथ बाहर निकलते थे। तब वे एक मात्र नेत्रों को खुला छोड़ समस्त शरीर को कपड़े से ढके रहते थे। वे स्वयं भी अच्छा ढोल बजाने में सक्षम थे। उनके द्वारा बजाने वाला ढोल एक अलग ही प्रकार का होता था। जिसका नाम था 'सीतानाथ'। कीर्तन के गीतों की रचना भी वे स्वयं ही करते। भावावेश में

लिखे उन गीतों को लघुबद्ध करने में अल्पसमय ही लगता । उसमें कोई काँट-छाँट भी नहीं होती । गीतों के स्वर स्वयं ही सीखा दिया करते ।

मित्र-मित्र समय के लिए उपयुक्त मित्र प्रकार के सैकड़ों गीतों की रचना उन्होंने की । ‘गाओरे आनन्द भरे रे कृष्ण नाम’, ‘उठो-उठो रे गुरु-गौरांग बोलें’, ‘हरि बोले नाचेंरे निमाई’, ‘एसो-एसो नवद्वीप राग’, ‘निमाई चाँद नेचे जाय मा’, ‘वयान भासे नयन धाराय’, ‘के रे कंगालेर वेश जाँचिया बेड़ाय’, ‘कबे राधार दया हबे’, ‘जावो हुन्दावनरे’, ‘बिधि यदि गुलालता करितो रे कुंज बने—इत्यादि पंक्तियाँ उनके समस्त गीतों, कीर्तनों और भजनों से सुनकर लोगों को सुखस्त हो चुका था । ‘ऐई श्याम राय’, ‘ऐई गोराराय’—इस प्रकार की कई गीतों की रचना भी उन्होंने की है जिसे सुनकर ही लगता है कि जैसे ये पंक्तियाँ उनके साक्षात् दर्शन का ही प्रतिफल है । उनकी पदावलिथियाँ ‘श्री श्री संकीर्तन पदावली’, ‘श्री श्री संकीर्तन पदावत’ इत्यादि के नाम से प्रकाशित हुई हैं ।

जगतबन्धु की रचना का असमान्य परिचय उनकी तीन अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है । जिनके नाम ‘श्री श्री हरिकथा’, ‘चन्द्रपात’, ‘विकाल-ग्रन्थ’ हैं । उनके प्रत्येक ग्रन्थ गंभीर तत्त्वपूर्ण हैं । उनमें इस तरह की भविष्यवाणियाँ हैं जिसे फलते हुए देखा गया है ।

कीर्तन का एक अपना ही वैशिष्ट्य था—‘हरि-लूट’ । चैतन्य महाप्रभु के अन्तरंग भक्त हरिदास ठाकुर ने बतासा लूटा कर इसका प्रचलन किया था । किन्तु यहाँ तो जगतबन्धु ने सर्वस्व लूटा देने का यज्ञ ही प्रारम्भ कर दिया था । चाहे श्री अंगन में ही होवे या किसी

अन्य स्थान में, वे स्वयं अपने हाथों से सब कुछ लूटा देते । प्रारम्भ में अवश्य ही वे प्रसाद वितरण करते, परन्तु परचाण आनन्द विभोर हो अपने समक्ष उपलब्ध सारी सामग्रियों को ही लूटा बैठते । परिणाम-स्वरूप, मिठाई, फल-फूल, वस्त्रादि, कम्बल, कागज, कलम, नोट, रुपये, नैसे, अंगूठी इत्यादि वस्तुएँ लूटा दी जाती ।

एक बार ऐसे ही अवसर पर समीप ही रखे सितार को ‘हरिबोल-हरिबोल’ कहते हुए उछाल दिये । फिर उसे दृढ़ सितार के मालिक को एक जोड़ी करताल देकर समझा दिये कि सितार जैसा शौकीन बाद्य राजा महाराजाओं को ही शोभा देता है । कीर्तन के लिए उपयुक्त बाद्य मृदंग, करताल ही होते हैं । यही दोनों बाद्य साक्षात् अद्वैताचार्य और नित्यानंद हैं ।

फरीदपुर शहर में जंगली हरिजनों का इलाका था । हिन्दू समाज में वे अस्पृश्य माने जाते थे । अंग्रेज पादरियों के बहकावे में आकर ईसाई धर्म ग्रहण करने पर सहमत हो गये थे । यह सूचना जगतबन्धु तक पहुँची । वे इस मुहल्ले के सरदार रजनी को बुलवाये । फरीदपुर के रास्ते में कीर्तन मंडली के समय गीत सुनते-सुनते बहुत बार रजनी मंडली के पीछे-पीछे हो लिये थे । उस मुहल्ले में जगतबन्धु का परिचय ‘प्रभु’ के नाम से हुआ था वही प्रभु बुलायी है, यह जानकार रजनी ‘ब्राह्मणकान्दा भागते हुए जा पहुँचे । जगतबन्धु उन्हें देख अपने हृदय से लगा लिये और पूछे—“रजनी, तुमलोग क्या ईसाई बनना चाहते हो ? बताओ तो क्यों ?” रजनी ने कहा—“प्रभु ! हमलोग जंगली जाति के हैं । सभी हमें नीच और तुच्छ समझकर अपने पैरों

तले रखते हैं। ईसाई होने पर हमारी यह दशा तो नहीं रहेगी।” जगतबन्धु ने कहा—“कौन कहता है कि तुमलोग नीच हो ? तुमलोग मनुष्य हो। मनुष्यों में ऊँच-नीच का भेद कैसा ? तुम सभी श्री हरि के दास हो। तुम्हारे मुहल्ले के सभी लोग महन्तवंशीय हैं और तुम्हारा नाम भी हरिदास महन्त है।” जगतबन्धु की बात सुनकर रजनी का मन द्रवित हो उठा। साथ ही साथ उनके मन में मान-अभिमान का जो मोह था वह मिट गया। उनका अब ईसाई बनने का इरादा शेष न रह गया। हरिदास नाम से अभिहित होकर वे श्री हरिपुरुष जगतबन्धु के दास बन गये। इसके साथ ही अनेक मुहल्ले के सभी स्त्री-पुरुष जगतबन्धु के परम-भक्त हो गये।

कीर्तन के लिए जगतबन्धु भक्तों में ढोल कराताल वितरित करते। बागदीपाड़ा अर्थात् इन हरिजन भक्त-गण को भी वे उसी प्रकार ढोल कराताल देते। जिसे पाकर वे भक्त भी कीर्तन में रम कर भूम-भूम उठे। बागदीपाड़ा का नाम पड़ा ‘महन्तपाड़ा’। आत्म-य कुटुम्बों के साथ मिलकर हरिदास महन्त ने विशाल कीर्तन के दल की स्थापना की। वह दल भी जगतबन्धु के कीर्तन के दल में स्थान पाया।

कलकत्ता के रामबगान में एक डोम-पल्ली नामक कबा था। जगतबन्धु कलकत्ता पहुँचने पर बहुत बार उसी मुहल्ले में रहते थे। तब डोम लोगों को कीर्तन कराना सिखाते। कुछ दिनों में ही रामबगान की डोम पल्ली कीर्तन करने की पवित्र भूमि और पुण्य स्थान बन गया। डोम लोग भी हरि-भक्त हुए। जगतबन्धु उन लोगों के बनाने खाने को खाते समय कभी भी दुविधाग्रस्त नहीं होते थे। डोम के मुहल्ले में सभी उनको

देवता की भाँति जानने मानने लगे। जगतबन्धु डोमपाड़ा में जाकर भक्त ‘तीन कौड़ी’ के घर में जिस स्थान पर बैठते, उस स्थान को वे लोग पवित्र मंदिर की भाँति मानते। रोज ही उस स्थान को धो-पोंछकर धूप-दीप जलाते।

रामकृष्ण परमहंस देव एक दिन ‘कल्पतरु’ हो, जिसकी जो इच्छा थी, दिये थे। जगतबन्धु भी उसी प्रकार एक दिन रामबगान में बैठकर भक्तों के इस साध को मिटाये थे—प्रत्येक की प्रार्थना को पूर्ण किये।

कलकत्ता में जिस समय ‘हैजा-महामारी’ का प्रकोप फैला था, उस समय जगतबन्धु के उपदेश से रामबगान के भक्त-गण कीर्तन करते करते समस्त शहर के चक्कर लगाते। हरिनाम के गुण और महिमा से एक तरफ लोगों के मन में साहस बढ़ता, दूसरी तरफ महामारी का प्रकोप भी धीरे-धीरे कम होने लगा।

नवद्वेप का हरिसभा बहुत ही प्राचीन प्रतिष्ठान था। इस प्रतिष्ठान के महत्त्व के साथ जगतबन्धु के घनिष्ठ सम्बन्ध थे। पहले ही नवद्वेप वैष्णवों के पवित्र तीर्थ के रूप में जाना-माना जाता था, उसके ऊपर जगतबन्धु के सम्पर्क से वहाँ का हरि सभा, सभी के लिए विशेष रूप से प्रिय हो उठा। पहले से ही जगतबन्धु का नवद्वेप में आना-जाना था, हरि सभा के महोत्सव आदि के उपलक्ष्य में भी उन्हें वहाँ जाना पड़ता। एक बार इसी प्रकार एक उत्सव के आयोजन के दौरान उनके साथ फरीदपुर के महन्त-भक्त-गण और वाकचर-गण भी नवद्वेप गये। प्रसाद ग्रहण के समय वाकचर के भक्तगण जिस प्रकोष्ठ में विराजित थे उसी

कमरे में महन्त भक्त-गण भी जल आदि लेने के लिये चुसे, जिसके फल-स्वरूप वाकचर भक्ताण प्रसाद छोड़ उठ खड़े हुए। इस प्रकार से वर्ण-भेद जाति-पैति का विचार करना हरिभक्तों के लिए गुरुतर अपराध है, यह विचार कर जगतबन्धु ने स्वयं दो दिन तक निर्जल-न्नत लेकर प्रायश्चित्त किया। इस प्रकार प्रभु जगतबन्धु अन्याय के विरुद्ध अनशन सत्याग्रह कर चित्त शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त करने का सूत्रपात इस देश में किया।

इतने दिन में देश के कोने-कोने से जगतबन्धु के असंख्य भक्त एकत्रित हुए। उन लोगों के मुख से उनकी अपूर्व भावनामयी गथा चारों तरफ काफ़ी चर्चित हो उठी। जगतबन्धु की दिव्य-कीर्ति, आचार-व्यवहार, शक्ति-भाव को जिसने भी देखा, उसके नेत्रों के समक्ष एक और दिव्य दृष्टि उभर आई और वह दृष्टि थी—नदिया जिले के 'निमाई महाप्रभु की।

—ई—

जगतबन्धु के प्रधान भक्ताण में एक विशिष्ट भक्त थे 'हरिबोला चम्पटी'। जिनका वास्तविक नाम अतुलचन्द्र-चम्पटी था। वे द्विगम्बरी देवी की कन्या क्षीरोदासुन्दरी के पति थे और पटना जिले के आरा-हाई स्कूल में हेडमास्टर के रूप में कार्यरत थे। विवाह के समय ब्राह्मण-कान्दा में जगतबन्धु से उनकी प्रथम भेंट हुई थी। उसी समय इस मसिया श्वसुर को देखकर उनका विशेष परिचय पाकर वे मन ही मन उन्हें अपना गुरु स्वीकार कर लिये थे। इस गुरुश्रान का प्रकाशमान रूप उस समय उभर कर सामने आया, जब इन्होंने उपदेशाश्रित ग्रहण

किया। ये प्रातःकाल से आरम्भ कर रात्रि-पर्यन्त कलकत्ता के जगन्नाथ-घाट से लेकर कालीघाट तक दहलते हुए हरिनाम किया करते और जितने बार भी दहलना होता जतनी बार ही गंगा स्नान करते। अतुल-चन्द्र कंधे पर मोला और हाथों में करताल लिये जगतबन्धु के उपदेशों का पालन एक वर्ष तक करते रहे। तत्पश्चात् भी उसी प्रकार दहलते-दहलते कलकत्ता की गलियों में 'हरिबोल' शब्द का हुंकार करते रहे। इसी कारण ही इनका नाम 'हरिबोला-चम्पटी' पड़ गया।

कुछ समय तक रामवर्गान का डोमपक्षी अतुलचन्द्र का कार्यक्षेत्र रहा। एक दिन डोम-भाड़ा होते हुए कीर्तन करते-करते चौरंगी घूमकर वे पुनः जगतबन्धु के पास जा पहुँचे। रास्ते में 'हगुबाजार' के कुछ कसाइयों ने मजाक-मजाक में उनके गले में मृत पशु का रक्तभरा अवशेष पहना दिया। उस अवस्था में स्वयं को अपवित्र समझ वे जगतबन्धु के पास जाने में संकोच महसूस करने लगे। किन्तु जगतबन्धु समस्त बातों को जान, उनको पास बुलाकर बोले—'जो हरिनाम करता है, वह सदा शाश्वत रूप से पवित्र होता है। उसे कोई अपवित्र नहीं कर सकता, जिस प्रकार अग्नि को कोई अपवित्र नहीं कर सकता।

कुछ दिनों के पश्चात् एक महापुरुष से चम्पटी की भेंट करने के लिये जगतबन्धु उन्हें पावना ले गये। वहाँ 'हाराण खैपा' के पास ले जाकर बोले—'शिब !' इसे तुम संभालो। तुम्हें देने के लिए ही, इन्हें ले आया हूँ।" हाराण खैपा पहले ही अतुलचन्द्र को एक अद्भुत जाति के व्यक्ति का जूठा खिलाकर मन ही मन समझ गये कि उनके पास जगतबन्धु ने किसी भूँटे या कमजोर माल का उत्तरदायित्व ग्रहण करने का भार नहीं सौंपा है।

जगत्बन्धु ने अपने 'बुड्ढे शिव' के पास और एक प्रधानाध्यापक को भेजे थे, जिनका नाम देवेन्द्रनाथ चक्रवर्ती था। जिनका कार्यस्थल था आसाम का 'शिलांग हाई स्कूल'। वे नित्यानंद प्रभु के परम भक्त थे। बात-बात पर 'जय नितार्ह' जय नितार्ह' कहकर अपने प्रभु का जयघोष करते। इसीलिये 'हरिवोला-चम्पटी' की भाँति लोगों में इनका परिचय 'जय नितार्ह' के नाम से था। वे पावना पहुँचकर जगत्बन्धु के दर्शन किये। तब जगत्बन्धु ने उन्हें 'हाराण-स्वैपा' या 'बुड्ढे शिव' के दर्शन कर आने को प्रेरित किया। जय नितार्ह 'हाराण स्वैपा' के पास पहुँचकर जगत्बन्धु का असली परिचय जान पाये बाद में स्वयं भी उन्हें जानकर-पहचान कर उनके परम-भक्त बन गये।

नवद्वीप में जय नितार्ह का वैष्णव साधु के साथ घनिष्ठता हो गई। वह साधु हमेशा ही 'नितार्ह-गौर' 'नितार्ह-गौर' बोलते। सड़कों पर धुमते हुए कीर्तन करते-करते समस्त शहर में हलचल मचा देते। पहले लोगों में उनकी 'राजन-बाबू' के नाम से जाना जाता। जय नितार्ह उन्हें 'राजन-दादा' 'राजन-भाया' कहकर पुकारते। वे भी जय नितार्ह को उनके वास्तविक नाम से ही पुकारते — 'देवेन-दादा' 'देवेन भाया'। जय नितार्ह के मुख से उन्होंने जगत्बन्धु का नाम सुना। उनके कई गीत भी सुन चुके थे। उन गीतों को पढ़कर वे इतने मुग्ध हो उठे कि कीर्तन के लिये वे व्याकुल हो उठे। उनका दर्शन भी उन्हें शीघ्र ही मिला। जगत्बन्धु को वे अशेष श्रद्धा-भक्ति किया करते थे। वे ही बाद में 'राधारमण चरणदास के नाम से नवद्वीप की बड़े बाबाजी के रूप में प्रसिद्ध हुए थे। जय नितार्ह के समान वे भी 'प्रभु' के परम भक्त थे।

वैष्णव समाज में रामदास बाबाजी सभी के पुज्य थे। संसारी जीवन में उनका नाम था 'राधिका गुप्त'। फरीद पुर में रहते थे अतः अल्प वयस से ही उनका जगत्बन्धु के पास आना-जाना था। वे गीत गा सकते थे और गाने भी थे मधुर स्वर में। जगत्बन्धु को उनका गीत बहुत पसंद आता था। परन्तु जगत्बन्धु को उन्हें पुकारने में बहुत मुश्किल होती थी क्योंकि वे 'राधा' या 'राधिका' उच्चारण नहीं कर पाते थे। बोलते—'अमुक'। परन्तु राधिका गुप्त को तो अमुक नहीं बोल सकते थे अतः उन्हें 'सारिका' नाम से पुकारते। परन्तु उनके भक्ति और ज्ञान का परिचय पाकर उन्होंने उनका नामकरण किया—'राम-दास'।

जगत्बन्धु किसी को साक्षात् रूप से दीक्षा नहीं देते थे। किसी के व्यग्रता के साथ उपासना के लिये मंत्र मागने पर कगज पर लिख कर दे देते। इस पर यदि कोई अनपढ़ होता तो दूर से ही लिखे हुये कगज को जोर पढ़कर सुना देते। जगत्बन्धु के आदेश पर रामदास नव-द्वीप और हुन्दावन में रहकर हरिताम का प्रचार करने लगे। परन्तु उनका मन दीक्षा लेने के लिये बहुत ही अधीर हो उठा, नवद्वीप के राधारमण चरणदास बाबाजी को वे प्रभु जगत्बन्धु का ही प्रतिरूप स्वीकार करते थे। जगत्बन्धु से अपनी आकांक्षा पूरी होते न देख उन्होंने राधारमण चरणदास से ही मन्त्र दीक्षा ली। तदुपरान्त भी जगत्बन्धु से दीक्षा न मिलने पर भी वे उनकी नित्य पूजा करते थे। इतना ही नहीं वे उनकी इतनी भक्ति करते थे कि उनके लिखे पत्र को छोड़कर और किसी के पत्रों को नहीं पढ़ते थे।

द्वीप, मृदंग आदि वाद्य कीर्तन के प्रधान सहायक होते हैं; इसमें से एक के भी अभाव में दूसरे को पुष्टि नहीं हो सकती। इन दोनों को एकत्रित करने का श्रेय नवद्वीप चन्द्र ब्रजवासी को जाता है। बंगलादेश के गरनहाटी कीर्तन और मृदंग वाद्य बजाने उनका कोई मुकाबला हो नहीं था। यह अद्भुत क्षमता उनको जगत्बन्धु के आशीर्वाद से ही मिली थी। जीवन के प्रथम बेल में वे दुन्दुषन के एक मंदिर के समान्य सेवक के रूप में रहा करते, और साधारण रूप से मृदंग बजाते। जगत-बन्धु उनको देख कर बंगला देश आने का निमंत्रण दिये। उनके गले में लटके हुए मृदंग को स्पर्श कर उन्होंने तब आशीर्वाद दिया कि वे गाने और बजाने में निपुण हो उस्ताद के रूप में विख्यात हो जायेंगे, हुआ भी यही। उनके इस अद्भुत गुण के मूल में जगत्बन्धु का आशीर्वाद ही था ऐसा उनका हमेशा से विश्वास रहा। इसीलिये जगत्बन्धु को अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया। हरिनाम के प्रचार के समय भी वे उनके शिष्य की भाँति ही गुरु की सेवा करते। उसी सेवा का फल उन्हें मिला था—गाने बजाने में बंगलादेश के अनेक गणमान्य व्यक्तियों के स्वयं गुरु बनकर।

अपने आप को जाहिर कर किसी कार्य को करना जगत्बन्धु को पसन्द नहीं था। वे अपने आपको गोपन रखने का प्रयत्न करते। एक-बार किसी विशेष अवसर पर गंगा स्नान के लिये वे नवद्वीप में उपस्थित थे। गंगा स्नान के लिये उस समय असंख्य यात्रियों की भीड़ जुटी हुई थी। उन यात्रियों भक्तों के मध्य यह बात आग की तरह फैल गई कि जगत्बन्धु गौरांग महाप्रभु के ही नये अवतार हैं। और जब जगत्-

बन्धु गंगा स्नान के लिए आर्चोंगे तो उनका दर्शन करने का मतलब साक्षात् भावना का दर्शन करना होगा। इस बात की खबर जब जगत्बन्धु के कानों में पहुँची तो वे कलकत्ता टेलीग्राफ भेजकर एक विशेष भक्त को बुला भेजे, और उनके साथ ही रात्रि के समय नवद्वीप से निकल भागे।

और एक बार फरीदपुर जाने के पथ पर एक बाजार के पास पहुँचते ही उन्हें याद आया कि वहाँ के लोग उन्हें देखते ही 'प्रभु-प्रभु' कहकर घेर लेंगे। उन लोगों से बचने के उद्देश्य से अपने साथी से बाँसा की अर्थी माँगा लिया। उसके बाद अपना सब अंग कपड़े से ढककर उस पर निश्चल हो सो रहे। उनके आदेश पर उनके संगियों ने बाँसा की अर्थी को कंधे पर ले, हरिबोल-हरिबोल कहते हुए बाजार के बीचोबीच से होते हुए चले आये। सभी लोग शवयात्रा समझकर एक ओर खिसक गये। कुछ दूरी तय करने के बाद जगत्बन्धु ने एक गहरी सांस छोड़ी मानो किसी गहरे संकट से अभी-अभी उबरे हों।

संसारि लोगों की दृष्टि में संयासियों का जीवन बड़ा ही नीरस होता है। किन्तु जगत्बन्धु कठोर तपस्या के समय भी मन की और वाक्य की सरसता का त्याग नहीं करते थे। वचन से ही वे कौतूहल करना पसंद करते थे। पहले वे बड़े भाई गोपालचंद्र की और तरणी-चरण कर्कशी के साथ मजाक करते। वे दोनों ही अधिकारीवंश और बगवां वंश की लड़कियाँ थी। जगत्बन्धु दोनों को ही 'भाभी' सम्बोधन न दे—'अधिकारी-भाया' और बगवां-भाया' कहकर पुकारते। जब वे

लोग पहली बार श्वसुर के घर आयी तो उनकी जगतबन्धु ने प्रणाम किया, बहुत ही विचित्र तरीके से—बाँस की लकड़ी का एक सिरा उनके पैरों पर रख तथा दूसरे छोर पर अपना सिर टिकाकर ।

दो भक्तों के मध्य हुए मनाई को सलदाने के लिए उन्होंने 'डीयुटी-मेजिस्ट्रेट' का रूप धारण कर कौतुक किया था । उसके लिए उन्होंने पेट पर टोकरी बाँध रखा था और एक चोंगा धारण किये हुए थे ।

दुर्गापूजा के अवसर पर भी उन्होंने एक कौतुक किया था—साड़ी और गहने आदि पहनकर माता दुर्गा का रूप धारणकर । उस समय लोग उन्हें देखकर साक्षात् देवी भगवती ही समझ बैठे थे ।

जब वे वाकचर श्री अंगन में रहा करते थे, तब उनके भक्तों का एक नया दल बना था । वह दल था आठ-नौ वर्ष की लड़कियों का एक दल । वे लोग भी कीर्तन कर-करके उन्हें सुनाया करती । एक दिन जगतबन्धु नदी में स्नान कर रहे थे कि इन भक्तिमत् लड़कियों का दल वहाँ जा पहुँचा । साथ ही आरम्भ हुआ, उनके बीच जल कीड़ा । उस खेल के अन्तर्गत एक लड़की ने अपनी एक सखी की साड़ी का छोर जगतबन्धु के कपड़े से बाँध दिया और बोली—“आजा इन दोनों का विवाह है ।” और तब सबके देखते-देखते, किसी ने वरण करना आरम्भ किया, किसी ने शंख की पवित्र ध्वनि निकालना शुरू किया तो कुछ विवाह का मन्त्र पढ़ने लगी । जगतबन्धु भी हँसते-हँसते लड़कियों के इस निर्दोष खेल का आनन्द उठाते हुए खेल में अपना योग देते रहे ।

कठोर साधना के समय भी उनका हृदय 'फल्गु-नदी' की भाँति रसमय रहता ।

कभी-कभी भक्तों के साथ आमोद-आह्लाद भी करते । उस समय उन्हें उम्र का विचार नहीं रह जाता था । फरीदपुर के बालकों के भक्त-दल को वे कहते—‘पैदल-सेना’ । बालकों में किसी का नामकरण करते ‘सवातीन हाथ’, किसी को ‘नेपोलियन’, किसी को ‘पाठक’, किसी को ‘सुबल बद्ध’ कहते और किसी को ‘गुप्त शिष्य’ कहकर पुकारते । अपने अन्तर्ग भक्त सेवक नवद्वीप दास को मजाक में ‘नफरधीप धाख’ कहकर पुकारते । भक्त दुःखी राम घोष के ‘घोष’ पदवी को व्यंग में ‘घड़’ कहते । कभी-कभी भक्तों के बातों के सूत्रों को पकड़कर भी मजे लिया करते । श्याम नामक एक भक्त को कोई बुला रहा है सुनकर बोले ‘श्याम-बाजार’ कहाँ है ? बिस्तरे से मसहरी उतारना होता तो कहते—‘आकाश को उतार दो, सोडपानी की इच्छा होने पर कहते—‘बन्दूक का पानी’ दो । इसके अतिरिक्त ‘ईसीनिडर पिसिनिडर’—इस प्रकार के अद्भुत-अद्भुत शब्द भी उनके मुख से सुना जाता । जिसका मर्म सिर्फ उनके अन्तर्ग भक्त ही समझ पाते । इसी प्रकार किसी की आवाज का नकल करते, तो कभी अंग-भंगियों की नकल करके कौतुक किया करते ।

शेष-पर्व

इतने दिनों तक देश-देश के कोने-कोने तक हरिनाम के प्रसाद को लटने के बाद जगतबन्धु की इच्छा हुई कि अब वे स्वयं भी इस हरिनाम प्रसाद का रसरसदान करें । क्यों न हो ? दूसरों को भर-भर सुट्टी हरि-

नाम प्रसाद बताशा बाँटने के बावजूद यदि स्वयं ही उसको ग्रहण न किया जाय तो भीटे स्वाद की अनुभूति कैसे की जा सकती है ? 'कृष्णोन्द्रिय प्रीति इच्छा' के कारण प्रेम साधना के उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे गोपियों के जैसा गुप्त अभिसार का संकल्प किये । जगत के पाप रूपी ताप को नष्ट करने के लिये इस साधना की आवश्यकता भी है । गंगाजी ने पहाड़ पर्वतों को रौंदते हुए, देश-विदेश को जल-ध्लावित करते हुए जब गुप्त मार्ग से पाताल में प्रवेश किया तभी महा-राजा सगर के ६० हजार पुत्रों का उद्धार सम्भव हो सका था । इसी प्रकार भी गोपन साधना को महापुरुष की "गम्भीरा लीला" कही जाती है ।

फरीदपुर शहर के समीप ही 'गोयालचामट' नामक ग्राम था । जगतबन्धु का नूतन तपोभूमि वह ग्राम हुआ । इसीलिये वहाँ पर एक श्री अंगन की प्रतिष्ठा की गई । वह अंगन 'श्रीश्रीधाम फरीदपुर श्री अंगन' नाम से प्रसिद्ध है । पहले श्री अंगन की मंदिर के निर्माण के लिये फूस का चौपाल निर्मित किया । अन्य प्रकोष्ठ के अभाव में भोग रसोई संबंधी हंडियाँ तक समीप के वृक्ष के डाली से झुलाकर रखा जाता था । बाद में अवश्य ही दूसरी व्यवस्था की गई और घर द्वार भी अनेक बनाये गये । श्री अंगन के काम-काज आदि के देखभाल के अतिरिक्त जगतबन्धु की सेवा सुश्रूषा के लिये बहुत से भक्तगण भी वहीं रहने लगे । प्रादेशिक सम्मेलन के उपलक्ष्य में फरीदपुर जाकर महात्मा गाँधी, प्रभु जगतबन्धु के प्रति अपनी श्रद्धा ज्ञापना करने के उद्देश्य से, हाथ जोड़कर इस अंगन के मंदिर में उपस्थित हुए थे ।

श्री अंगन हर तरह के लोगों के लिये आने का द्वार खुला था, जगतबन्धु जय नितार्ई को इस द्वार का अर्थ समझाते हुये बोले थे—'वे द्वार किसी काष्ठ या अन्य धातु से निर्मित कोई साधारण द्वार नहीं है, अपितु यह उनके हृदय का प्रतीक है, जो भी अपने सहज विश्वास के साथ श्री श्री अंगन में एक बार भी गया है, उन्हें ही इसका प्रमाण मिला ।

श्री अंगन के समीप ही एक 'चालिता' का वृक्ष है । इस वृक्ष का रंग भी कृष्ण के श्यामवर्ण की तरह है । भक्तगण और चारों तरफ के लोग इसको गया के अक्षय वट और वृन्दावन के तमाल तरु के समान ही पवित्र मानते हैं । प्रायः बारह महीने ही इस वृक्ष के नीचे यात्रियों की भीड़ जमती है । जन्म से कोई मनौती मानने के लिये आता है तो कोई अपने कष्ट विपदों से उद्धार पाने के लिए, तो कोई अपने अपने बच्चों के मुंडन संस्कार के लिये आते । विवाह के बाद नये वर बधू आकर वृक्ष के चारों तरफ परिक्रमा करते । गृहस्थ घर की सखवा रित्रियाँ आकर वृक्ष के शरीर में सिंदूर लपेट देती, नये नये कपड़े पहना देती । इस वृक्ष का फल भी खूब मीठा होता । उस फल में देवगुण है । ऐसा सभी का विश्वास था ।

रामदास बाबाजी वृक्ष को बहुत ही पसंद किया करते । श्रीअंगन के किसी भी व्यक्ति को देखते, तभी उससे उस वृक्ष के संबंध में पूछ बैठते । द्वितीय महायुद्ध के समय नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने भारत में निरुद्देश्य होने के पूर्व श्री अंगन की एक चालिता फल को कल्याणकारी मानकर बड़े ही श्रद्धा के साथ ग्रहण किया था ।

—२—

“नाम स्मरण से ही समस्त जगत का उद्धार सम्भव है” और इस जगत के उद्धार के लिये ही तो नाम का प्रचार करना जगत्बन्धु का महाव्रत था। गोपालचामट श्री अंगन में भी उसी कीर्तन की व्यवस्था की गई। कभी-कभी उसमें त्रुटि देखते तो समझते हुए कहते—“एकमात्र हरिनाम ही रक्षा का उपाय है, तुमलोग हरिनाम करके सृष्टि की रक्षा करो।”

भक्तों की संख्या जितनी ही बढ़ती गई, श्री अंगन में आनंद का भी महौल उतना ही जमने लगा। साथ ही साथ जगत्बन्धु की ईश्वर के प्रति लगन और बिह्वलता और भी बढ़ती गई। बंगला साल १३०८ में उनमें भावीन्माद का लक्षण दिखाई दिया तभी से उनमें शिशु-भाव के साथ-साथ दिव्यभाव को भी प्रकाश्य मिला। जब शिशुओं की भावदशा में होते तो सचमुच माँ की गोद में पड़े चंचल बालक के समान हो जाते। बस्त्रादि के साथ भी संपर्क नहीं रह पाता था। अतः लज्जा-शर्म का भी क्षणिक-मात्र भी फिक्र नहीं करते थे, सबके सामने एकदम नंगे खड़े हो जाते। पैरों में रबर के जूते पहनना पसंद करते। बच्चों के समान ही तब भी वे वही जूता पैरों में पहनकर आया करते।

भक्तों से दृढ़ करके, माँग-माँग करके करके वे भोजन किया करते। इसीलिये उनके लिये हिन्दू-मुसलमानों में कोई अन्तर नहीं था। मुख से भी बोलते—“मेरे लिये हिन्दू, मुसलमान दोनों ही समान हैं।” आचरण में भी किसी प्रकार का व्यक्तिगत नहों होता था। मेले के समय वे किसी से फारमाईश करते—मिट्टी के खिलौने के लिये, खेउने

बाली घड़ी, बाँसुरी आदि के लिए। जब उनको सभी चीजें मिल जाती तो उसी से खेलने लगते। घड़ी की सुई चल रही है कि नहीं, उसे ध्यान से देखते। बाँसुरी को मुख में लेकर पों-पों कर बजाने लगते। भक्तगण भी उनके इस प्रकार के भाव को देख उसका मधुर सरस आनंद लेने के लिये कभी-कभी कौतुक भी किया करते, वे खाली घड़े को इस प्रकार से जगत्बन्धु के सामने प्रस्तुत करते मानों उसमें जल है और वे सिर पर डालने का अभिनय करते। जगत्बन्धु भी मींगने के भय से शिशुओं की भाँति सिह-सिहर कर इधर-उधर भागने लगते।

इस भाव के साथ ही देखा गया और एक भाव—‘दिव्य-भाव’। भावोन्माद की दशा को ही त्रयोदश दशा कहते हैं। इस दशा में शरीर पर विष्णु के अंश का अविर्भाव होता है और तब शरीर की रक्षा का कोई उपाय नहीं रह जाता। जगत्बन्धु पहले ही इसका आभास दे दिये थे। एक बार उन्होंने कहा भी था—“बताओ तो मैं शब हूँ, या बैतरणी?” इसका मर्म भाव सम्भवतया यह था—वे मनुष्य को बैतरणी पार कराने के उद्देश्य से आये, पर हो पड़े शब, अर्थात् मृत के समान ही।

इस भाव के आवेश में रहते-रहते बंगला सम्बत् १३०६ में आषाढ महीने में उन्होंने मौन धारण कर अपनी “गंभीरा-लीला आरम्भ किये। १३२५ के १६वीं फाल्गुन तक पूरे सोलह वर्ष आठ महीने तक यह व्रत चला। इस दशा में वे श्री श्री धाम फरीदपुर श्री अंगन के एक छोटे और अन्धकारपूर्ण प्रकोष्ठ में एक दरबाने को छोड़ कोई खिड़की या

छिद्र न था। प्रकोष्ठ में प्रकाश जलाने का भी नियम न था फिर भी प्रतोष्ठ जैसे सबदा प्रकारमान रहता। प्रकोष्ठ का दरवाजा बन्द कर दिन रात वे अकेले ही उसी में रहते।

मौन ब्रत धारण करने के पश्चात् प्रथम के कुछ वर्षों तक आवश्यक चीजों के नाम कागज पर लिख वे बाहर फेंक दिया करते। किसी को भी कोई भी उपदेश की आवश्यकता होने पर इसी प्रकार लिखकर अपने भक्तों को लप करते। किसी को भी प्रकोष्ठ में जाकर भोजन देने का उपाय नहीं था। भोग देने का निवेदन प्रकोष्ठ के बाहर से ही किया जाता। अपना सर्वांग कपड़े से ढक दरवाजे के पीछे खड़े हो कबूट खोला करते। तब उनकी तरफ न देखते हुए भोग की थाली चोकट पर रख दिया जाता। वे बहुत कम खाते थे। साधारणतः एक तोला या दो तोला के परिणाम से। कभी-कभी बहुत हुआ तो एक ब्रूटाक या दो छटाक के अन्दाज से ही ग्रहण करते थे। वे एक खाद्य पदार्थ को दूसरे खाद्य पदार्थ के साथ मिलाकर ग्रहण नहीं करते थे। कोई भी राजसी खाद्य सामग्री वे ग्रहण नहीं करते थे। किसी भी दिन एक बार से अधिक नहीं खाते थे और कभी-कभी दो-तीन दिन न खाकर भी रह लेते और एक बार तो बारह दिन तक उपवासी रह गये उस दौरान अपने प्रकोष्ठ का दरवाजा भी नहीं खोलते थे।

धरे-धीरे क्रमवार भोग लाने की पद्धति का अवसर कम होता गया। भक्तगण पंछे की तरफ से एक दरवाजा बना लिये। उस दरवाजे द्वारा ही भोज्य पदार्थ रखने का अवसर तो अवश्य मिला परन्तु कभी तो भोज्य-सामग्री बिल्कुल ही अछूते ही मिलते। घर के अन्दर पूर्णतया निस्तब्धता व्याप्त रहती।

— ३ —

साधारणतः जगतबन्धु निरोग ही रहते थे। वंग सम्बत् १३२० के कार्तिक महीने में वे दो तीन दिनों के लिये अस्वस्थ हो गये थे। उसके बाद १३२५ के पौष मास में भावद्वारा से बिहल हो उठने के कारणव उनका शरीर निश्चेष्ट ही पड़ा था। यह अवस्था उनके दिव्यावस्था की चरम स्थिति होते हुए भी वे प्रभु नित्यानन्द के आभिर्भाष तिथि एवं कुछ अन्य के विशेष तिथियों पर कुछ सामान्य क्षणों के लिए बाहर निकले। प्रत्येक अवसर पर ही वे पूर्णतया दिगम्बर ही सिधु सा निश्छल रूप में निकले। पैरों में रबर के जूते और नेत्रों में भावयून्यता लिये उपवास रीतापन। उनकी अस्वस्थता के समय भक्तगणों का उनका दर्शन करना मना नहीं था। भक्तगण नियमित रूप से उनकी सेवार्थ प्रस्तुत रहा करते थे, परन्तु उस समय भी वे मौन ही रहते।

उस मौन भंग के पश्चात् उनके आहार के परिमाण में कमी आई। तब बीच-बीच में पालकी पर चढ़कर बाहर भ्रमण करने भी कोई आपत्ति नहीं करते। सम्बत् १३२८ के भादो माह में उनकी सेवा में रत दो भक्तगण उनके पलंग को बढ़लने के प्रयास में पछाड़ खाकर उनके सहित गिर पड़े परिणाम स्वरूप उनकी पसली की हड्डी टूट गई। उसी अवस्था में १३२८ के पहले आश्विन मास को, साधारण जन की समक में अपनी लीला का संवरण किया। भक्तगण का यह विश्वास था कि यह अप्रत्यक्ष अवस्था प्रभु जगतबंधु के महा उद्धार लीला का ही एक सामयिक दशा है। जीव के रोग विषाद को स्वयं धारण कर उसकी इस संताप से मुक्त करने और पाप के महाप्रलय को नष्ट करने एवं जगत के उद्धार के

निमित्त जगद्बन्धु की यह लीला भावसमाधिस्थ के रूप में है। यही उनके महाउद्धार-लीला का प्रच्छन्न रूप है। तप के पूर्णाहूति के पश्चात् ही महायोग द्वारा वे फिर पूर्ण चैतन्यावस्था को प्राप्त होंगे।

—४—

जगद्बन्धु लीला के शेषार्ध, १३२३ साल में महानाम सम्प्रदाय नाम से एक कीर्तन मंडली की सृष्टि हुई। जगद्बन्धु के अन्तरंग भक्त महेन्द्रजी इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। महेन्द्रजी का जन्म स्थान जसोहर जिला में था। युवावस्था में ही वे संसार का मोह त्यागकर धुन्दावन चले गये। वहाँ दीवानों की तरह जंगल-जंगल में मारा-मारा फिरते थे और 'हरि' 'हरि', 'रावे' 'रावे', 'कृष्ण' 'कृष्ण' का गुहार लगाते-लगाते बिलाप करते। लोग भी उन्हें पागल ही समझते। सभी उन्हें 'मति-भ्रमिस्त' 'महेन्द्र' के नाम से ही जानते।

एक दिन स्वप्न में उन्होंने प्रभु के मूर्ति का दर्शन किया। उस स्वप्न के सुप्मार में ही उन्हें सुनाई दिया, जैसे किसी ने कहा हो—“ये ही है श्री श्री प्रभु जगद्बन्धु।” इसी तरह बीच-बीच में बहुत बार वे प्रभु के उपदेश भी स्वप्न में पाने लगे और तब वे उनके दर्शन पाने के अभिलाषी बन गये। ऐसे ही अवसर पर अचानक ही एक दिन बुन्दावन में ब्रह्म-कुण्ड के निकट प्रभु के प्रिय भक्त नवद्वीप दास के साथ उनकी भेंट हुई। उनसे ही वे बन्धु सुन्दर का संधान पा बंगलादेश भागे हुए आये।

प्रभु के दर्शनलाभ के पश्चात् महेन्द्र जी उनको परम-देवता के रूप में बड़े प्रेम और भक्ति के साथ सेवा करते लगे। प्रभु की लीलाओं के

सन्ध्या में उन्होंने अनेकों भक्ति-मूलक संगीत की रचना की है। ये संगीत मानो श्री श्री प्रभु जगद्बन्धु के आरती के जीवन्त मंत्र हैं। 'हरि पुरुष जगद्बन्धु महानाम' के नाम से वह प्रथाकार में प्रकाशित हुआ है महानाम सम्प्रदाय के प्रतिष्ठा में महेन्द्र जी के प्रधान सहयोगी श्री कुंजदास जी का महत्त्वपूर्ण स्थान था। उनके द्वारा रचित 'श्री जगद्बन्धु-धाम' और 'बन्धुनामाला' नामक दो ग्रन्थ हैं। वर्तमान में इस सम्प्रदाय के आचार्य डॉ० श्रीमान महानामाव्रत ब्रह्मचारी हैं। उनका पहले आश्रम का नाम श्री बंकिमचन्द्र दासगुप्त था एवं जन्म स्थान बरिशाल जिला में था। वह जैसे भक्त थे वैसे ही विद्वान् थे तथापि अभिमान रहित थे। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों में विशेष रूप से उल्लेखनीय—'श्रीश्री बंधु स्मरण-मंगल', 'श्रीश्री स्मरण-मंगल', 'श्रीश्री राधा कृष्ण-स्मरण-मंगल', 'श्रीश्री हरि पुरुष-ध्यान-मंगल', 'श्री श्री गोपी मंत्र माधुरी', 'गीता ध्यान', 'ब्रह्म-गायत्री', गौर कथा', 'चण्डी चिंता' है। प्रत्येक ग्रंथों में ही अमूल्य तत्त्वों का भंडार है।

महानाम सम्प्रदाय के प्रतिष्ठा के समय कीर्तन द्वारा प्रभु जगद्बन्धु आधिर्भाव की बात देश के कोने-कोने तक पहुँचाना ही सम्प्रदाय का मुख्य उद्देश्य था। महेन्द्र जी और कुंजदास जी कुछ संसार-त्यागी भक्तियों को संग लेकर यह प्रचार कार्य आरम्भ किया। तत्पश्चात् अनेक प्रभु के भक्तगण ही इस कार्य में योग देने लगे। भक्तगणों ने प्रभु जगद्बन्धु को महा उद्धारक के नाम की महिमा का गुणगान करना ही इस महानाम सम्प्रदाय का एकमात्र लक्ष्य बन गया।

श्री श्री धाम फरीदपुर श्री अंगन के मंदिर में प्रभु अनन्त शैल्या पर

नेत्र बंद किये हुए हैं। बाहर महानाम सम्प्रदाय का कीर्तन चल रहा है। डीम पल्लो के भक्त और महन्त सम्प्रदाय के भक्त आकर कीर्तन में अपना योग दे रहे हैं। चारों तरफ से गृहस्थ भक्तगण आकर उपस्थित हुए हैं। शहर और ग्राम से समूह में स्त्री पुरुष आकर श्री अंगन में भर गये हैं। देश वन्तु चितरंजन दास, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती वासन्ती देवी एवं पंडित श्याम सुन्दर चक्रवर्ती अपने भक्ति के शेष अर्धा और श्रद्धांजली अर्पित करने कलकत्ता से आए हुए हैं। भक्त-चुन्दों का हाहा-कार और आत्मीय स्वजनों का विलाप-ध्वनि के साथ कीर्तन की आवाज ने फरीदपुर श्री अंगन को महातीर्थ बना डाला।

तेरहवीं आश्विन तक प्रभु अपने शैल्या पर योग निद्रा में लीन रहे। श्री अंगन में बारह आश्विन तक रात-दिन कीर्तन चलता रहा। उन्नीस दिन के अशोच-दिवस के पश्चात् दूसरे कार्तिक से कीर्तन पुनः आरम्भ हुआ एवं तबसे निरन्तर ही निर्विच्छिन्न रूप से चलता रहा। वाक्चर के और ब्रह्मणकांदा के श्री अंगन में, डाहापाड़ा के श्रीश्री जगत्बंधु धाम में, कलकत्ता शहर के मानिकगंगा के महा उद्गारन मठ में, कृष्णनगर के महेन्द्र वन्तु अंगन में, नवद्वीप महानाम मठ में तथा अनन्य स्थानों के श्रीश्री प्रभु जगत्बंधु के साथ्रम में महा उद्गारन के स्मरण तिथि के उपलक्ष्य में एवं विशेष विशेष दिनों में पाठ, कथा, कीर्तन होता रहता था। कीर्तन में भी प्रभु द्वारा रचित गीत ही प्रधानतः गाये जाते हैं।

—६—

कृष्णदास कविराज गोस्वामी के अनुसार वृन्दावन दास ठाकुर श्री

चैतन्य लीला के आदि व्यास थे। वृन्दावन दास द्वारा रचित “चैतन्य भागवत” में लिखा है—चैतन्य महाप्रभु भक्त-चुन्दों से कहते हैं—

“हेनमत आरो आछे दूई अवतार।

कीर्तन आनन्द रूप हईवे आमार।”

—ये अवतार कौन हैं, यह जानने के लिये प्रथमतः गीता के श्री भाषात के वाक्य का स्मरण करना अति आवश्यक है—धर्म का जब-जब हास होता है भगवान् पृथ्वी पर अवतार लेते हैं, उसके लिये मनुष्य के रूप की तो बात ही क्या, मत्स्य, कूर्म, वराह का रूप तक धरना पड़ा था। जब कभी भी उन्हें इन रूपों में पृथ्वी पर आना पड़ा था, उस देह के गुण अवगुण का त्याग वे नहीं कर पाते थे।

मनुष्य होकर जब वे इस पृथ्वी पर आये, तब उनका आचार व्यवहार, सुख-दुःख, मोह-याया देखकर उनको साधारण मनुष्य कह बैठना कोई विचित्र बात नहीं थी। परन्तु अवतार रूप में उनके क्रिया कलापोंको देखकर उनको पहचान पाना कठिन नहीं था। चैतन्य अवतार में वे प्रेम के बाढ़ में एक तरफ जिस प्रकार सबको बहा दिया था, दूसरी तरफ स्वयं भी वे इस प्रेम के आस्वाद को ग्रहण कर चुके थे, भावद्शा में डूबते उतरते। कालान्तर में जब कभी धर्म सम्बन्धी भलानि उत्पन्न होगी, चैतन्य देव पुनः आकर कीर्तन आनन्द में सबको डूबा देंगे, उसी से सबको भलानि दूर होगी, यही वृन्दावन दास ठाकुर बताते हैं।

और इसी कार्य के लिये श्रीश्री प्रभु जगत्बंधु आये थे। चैतन्य-महाप्रभु और प्रभु जगत्बंधु के जीवनी की आलोचना करने पर इस संदर्भ में कोई संदेह नहीं जाता।

एक तो दोनों में ही थी एक प्रकार की दिव्यकान्ति और समान उन्न । उसके ऊपर धर्म और कर्म में दोनों के ही एक पथ थे । चैतन्य देव के जन्म रहस्य के साथ ही जगत्बन्धु का भी जन्म-रहस्य में कोई अन्तर नहीं था । दोनों का ही जन्म हुआ था ब्राह्मण पंडित के वंश में, भगवान के नाम कीर्तन के शुभ लग्न के अवसर पर ।

बचपन में उनका बाल-सुलभ उत्पात भी प्रायः एक जैसा ही था । उस उम्र में चैतन्य देव जिस प्रकार कूड़े-करकट के ढेर पर बैठे थे वैसे ही प्रमशान घाट पर निर्वाकार रूप से आरुढ़ हो पड़े थे प्रभु जगत्बन्धु । चैतन्यदेव 'गंगा' में पिण्डदान करने जाकर संसार के माया की मुला बैठे थे, प्रभु जगत्बन्धु की यह अवस्था हुई थी उनके जनेक संस्कार के उपरांत । फिर भी, निर्माई कभी भी रचनी माता की नहीं भूले, बन्धु सुन्दर भी उसी प्रकार, दीदी दिगम्बरी देवी की और गोलकर्मण देवी को नहीं भूले थे । दुर्गापूजा के अवसर पर चैतन्यदेव की ही भाँति प्रभु जगत्बन्धु की स्त्री की भाँति साज-सज्जा कर कौतुक किये थे । दोनों ने ही तीर्थ भ्रमण, कीर्तन और भगवान के नाम का प्रचार-प्रसार करते रहने का व्रत लिया था और इस व्रत पालने के उद्देश्य से दोनों ने ही सिर मूड़ा ढाला था । चैतन्य देव कहते थे—'हरिमत्त चण्डाल होने पर भी श्रेष्ठ ब्राह्मण है', प्रभु जगत्बन्धु ने रजनी हरिजन की कहा था—'मनुष्य में ऊँच नीच कैसा ? या जाति-पाँति का भेद कैसा ?' जगार्ह, माधार्ह, नरोर्ज, भीलपथ आदि दुर्जन व्यक्ति जिस प्रकार चैतन्य देव के दिया एवं कृपा दृष्टि पाये थे, उसी प्रकार जगत्बन्धु की कृपादृष्टि के पात्र बने थे राँची के और पावना के कुछ दुष्ट व्यक्ति । जिस प्रकार

महाप्रभु धर्म के नाम पर हरिवास के ऊपर कठोर शासन किये थे, प्रभु जगत्बन्धु भी उसी प्रकार छोटे-बड़े नितार्ह की भी दण्डित किये थे । पुरी में जगन्नाथ मंदिर में जाकर चैतन्यदेव प्रहर पर प्रहर निरन्तर जगन्नाथ देव की एकटक जिस प्रकार देखा करते, उसी प्रकार जगत्बन्धु नन्ददेव के हरिसंभा में जाकर अप्यक्त नेत्र से देखा करते नटवर गौरांग सुन्दर की । चैतन्य देव की तरह ही प्रभु भी किर्त्त को भी मंत्र देकर शिष्य नहीं बनाते थे, फलस्वरूप दोनों के ही असंख्य भक्त थे और वे भक्तजगत् दोनों की ही भगवान के रूप में मानते थे ।

चैतन्य देव की नीति थी कि—“क्यकि को ठणवत नम्र और षट्दृश के समान हट्ट भतिव्व एवं धैर्यवान होना चाहिये ।” इसी नीति के आधार पर प्रभु जगत्बन्धु का कहना था—“समी की विनयरशील और पृथ्वी के समान सहिष्णु होना चाहिये, जैसे पृथ्वी अपने ऊपर हुए अत्याचार को सहन करती हुई अपने अन्त स्थल से मणि-माणिक और धनधान्य की अखिल आपूर्ति करती रहती है ।” अपने को 'बैभाव-भिक्षुक' के रूप में प्रतिष्ठित कर वे स्वयं भी मन, वाणी एवं आचार-व्यवहार से इस नीति का अधोपरान्त पालन किया करते । श्रीवास पंडित के नवजात शिशु के मुख से संसार इस नरवर संसार की नरवाता की बात सुनाये थे उसी प्रकार जगत्बन्धु यही बात शुन्दवन के शमशानघाट पर एक बृज-बासी कृष्ण शिशु के मुख से, उसकी 'अरे लाला-अरे लाला' का सम्बोधन दे सुनवाये थे । भक्ति दशा में अभिभूत हूँ प्रभु जगत्बन्धु एवं मूढक शिशु भी दिव्य-भाव से चैतन्यदेव के उसी भाव-दशा के पूर्ण रूप को प्राप्त हुए थे—चारहवीं दशा से परे एक और अलौकिक दशा

में पहुँच कर इस दशा भाव में प्रियत हुं प्रो। इससे परे श्री, चैतन्यदेव के प्रेमलीला की परिणति—उद्धार लीला अर्थात् जिससे सबे जगत् का जगत् और उद्धार होता है। उसका भी जगत्बंधु 'हरिभक्ति' का मार्ग-दर्शन करा सबको उस पथ पर चलने को प्रेरित किये। आत्माभिमुख हो जिस प्रकार चैतन्य देव को नरसिंह अवतार और अरुण के रूप में परिलक्षित किया गया था, ठीक उसी प्रकार जगत्बंधु को भी उनकी रक्षा की गोलकमणि और उनके स्वामी के द्वारा राधा-भक्त मोहन की प्रतिमा के रूप में, दुःखीरास नामक एक भक्त के द्वारा 'भक्त सुख' के रूप में, एवं रघुनाथस और सुरमाता मासके अवयवों के रूप में द्वारा विष्णु व विराट रूप में देखा गया। विभिन्न किन्तु सब भाव यह ही दोनों महाप्रभुओं के द्वारा राधा नाम का उच्चारण करना असंभव प्रतीत होता था। दोनों ही महाप्रभुओं ने अपनी अस्मिन्-लीलाओं के पूर्व 'महा-गर्भीरा लीला' का प्रदर्शन किया था।

इन सभी महालीलाओं का चिंतन मनन करने के परचाए किसी भी तरह चैतन्य देव और जगत्बंधु में पर्याय्य नहीं किया जा सकता। इसलिए 'अभिषेक तिमार्दै चरित' के प्रणेता महात्मा प्रशिार कुमार बोध व बाबा प्रेमानन्द भारती प्रभु जगत्बंधु की 'सब-गौरांग' कहकर प्रचार किये थे। कलकत्ता में तत्कालीन अंग्रेजी पत्रिकाओं में उनकी 'नूतन-अवतार' कहकर सम्बोधित किया था। नवर्द्ध प के हरि सभा में भी उनके गौरांग महाप्रभु का अभिलेख रूप माना गया था। इसी विरहास के अनन्तार्थ प्रशिार कुमार उनके निर्देष्टा पर कठिनाई के अन्तर्गत पर

कलकत्ता बल्लभर कर्तन करने में भी किसी दुविधा का बोध नहीं करते थे।

भक्तगण का विरहास था—जिस प्रकार राधाकृष्ण का संयुक्त रूप चैतन्यदेव हैं, ठीक उसी प्रकार तिमार्दै और निवर्द्ध का एककार रूप की प्रतिमूर्ति स्वयं जगत्बंधु हैं। जगत्बंधु के अन्तर प्रेम रसाशुत्र का रसास्वादन एवं तिमार्दै का हरिताम प्रचरण और प्रसारण दोनों ही रूपों का अभिन्न समन्वय है। भक्त प्रवर महेन्द्र जी ने अपने अन्तरमण्ड में उसी रूप के विरहास के आधार पर यह उद्घोषित किया था—

“जय सुन्दर लीला रस मय जय जगन्नु हरि है।

ऐका धारे तिमार्दै-गौर गोप, किशोरी राधिका मोहन है ॥”

इस उद्घोष का मूत्र आधार प्रेम साधना का आदान प्रदान है, जो कि एक ही साथ अखंड और अविच्छिन्न रूप से प्रेम के साथ संमविष्ट है। जगत्बंधु का यह प्रेम साधना प्रभु तिमार्दै के राधा-प्रेम के रसास्वादन का आदान और प्रभु तिमार्दै के राधा प्रेम के आस्वादन के प्रदान का संयुक्त रूप है। वृन्दावन में राधा भाव के अभाव की पूर्ति के निमित्त ही गौरांग महाप्रभु का राधा वृष्ण के एकाकार एवं एकत्वक रूप में नवर्द्ध प में आविर्भाव हुआ था। पुनः नवर्द्ध प के लीला में भाव-मय तिमार्दै को प्रेमास्वादन में गौरांग महाप्रभु के जिस अभाव को अनुभूति हुई थी, उसकी पूर्ति के निमित्त ही जगत्बंधु का अवतरण फर्कटपुर् में श्री तिमार्दै-तिमार्दै के संयुक्त रूप में हुआ था इसे इच्छा की पूर्ति के लिये जगत्बंधु भी गौरांग महाप्रभु की ही तरह महातन्मय हो अपनी महागर्भ-रा लीला भाव में स्थित रहा करते थे।

भाव में विकार रहने से मानव त्रयोदश भाव का स्थिति को नहीं प्राप्त कर सकता । किन्तु इसी असम्भव को जगत बन्धु ने सम्भव कर दिखाया । उसके उपरंत भी उनके देवी शरीर में दो अलौकिक एवं विशिष्ट लक्षण भी परिलक्षित होते थे—पहला लक्षण था उनके शरीर से निकलने वाली स्वर्गीय सुगन्ध की और दूसरा उनकी दिव्य कान्ति या आशा की कीचड़ में कमल का खिलना मात्र उक्त नहीं है । कीचर या पंक में पैदा होने के कारण ही कमल को पंकज पंकज कहा गया है और कीचड़ में पैदा होने के कारण ही कमल का महात्म्य या सुगन्ध नष्ट नहीं हो जाता । इस जगत रूपी पंक जगत बंधु पंकज रूप में प्रस्तुति हुए थे । उनका यह अप्राकृतिक शरीर निरंतर पुण्य के मलय द्वारा इस संसार में अपना सौंदर्य बिखेरता था । इस सुगन्ध का आभास वहाँ मिलता था जहाँ वे बैठते थे, सोते थे, जिस मार्ग से भी गुजरते थे, वहाँ तक कि उनकी उपस्थिति से आस-पास का क्षेत्र भी इस आलौकिक, देवी सुगंध से सराबार हो उठता था । उनके बरगों से भी बड़ी ताजा पुष्प का सुगंध निकला करता था । स्वर्ग का परिजात या अमलान (रंगीन, कली न मुरझाने वाला पुष्पका पौधा) चिरन्तन राज्य द्वारा अप्राकृतिक दान जो है ।

महापुरुषों की कान्ति का परिलक्षण तो उनके चित्रों से ही हो जाता है । शरीर का भी कथन है कि साधना शक्ति से युवावस्था में भी ज्योति का दर्शन सम्भव है । इसी ज्योति रूप को जगत बंधु के दिव्य शरीर में देखा जाता ; इसी कान्ति को गुप्त रखने के निमित्त वे अपने

सम्पूर्ण शरीर की बरगों से ढके रखते थे, फिर भी कभी-कभार लोगों की दृष्टि उस कान्ति पर पड़ ही जाया करती थी ।

पावना के एक ताला के किनारे, बाकचर के नदी-जल में ब निर्जन मैदान में, फर्, दपुर के चाँदमारी और श्री अंगन में, ढाका के एक बर्ग, वे में नवद्वीप के और राजा सुर के शमशान में उनकी ज्योति भिन्न भिन्न समय में भिन्न जगहों पर लोगों को दृष्टिगत हुई । एक अवसर पर दिगम्बरी देवी ने जगतबंधु के ब्रह्मांश से निकली प्रकाशपुंज की सूर्य-रश्मि के साथ एकाकार होते देखा । गोलकमणि देवी और उनके पति ने जंगल में जाते हुए एक प्रकाश पुंज को देखा और फिर सिद्धासा वरा आते जाने पर स्वयं जगतबंधु को पाया जिनके शरीर से यह प्रकाश आलोकित हो रहा था । रामदास बाबाजी को साथ ले प्रभु एक दिन हुन्दावन में यमुना स्नान करते गये थे । स्नान करते समय उन्होंने अपना बही वरत रामदासजी को दिया उनके शरीर की दिव्य आभा को देखकर वे अचेत हो गये ।

बाल्यावस्था में प्रभु जगत बन्धु के सहपाठी व मित्र थे रमेशचन्द्र चक्रवर्ती । एक बार उनके द्वारा रचित 'ब्रह्मचर्य' नामक एक ग्रन्थ में बंगलादेश में काफ़ी ख्याति प्राप्त किया था । रमेश चन्द्र प्रभु के उपदेश पर स्वयं भी ब्रह्मचर्य का पालन किया करते थे तथा हृदय स्थल में प्रभु को अपना गुरु मानकर उनकी भक्ति किया करते थे । जब वह कलकत्ता रहते थे तब एक बार उनके पास प्रभु पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि प्रभु के ललाट से चन्द्रमा की पूर्ण ज्योत्स्ना निकल रही है । रमेशचन्द्र

न सुन रहा था कि प्रभु जगत्त्रय के लज्जाट के चिन्ह को 'कमल भाव' कहते हैं। इस प्रकार चिन्ह-पूर्णरूप से एकमात्र श्रीकृष्ण के लज्जाट पर ही सुप्रोभिन्न रहता था।

जिस ओति पुंज, काव्युक, देवी महापुरुष के क्षणिक दर्शन भाव के लिये ऋषि-मुनि घोर तपस्या में लीन रहते हैं वे महापुरुष दिव्य रसरीर धारण कर, जल में प्रतिबिम्बित आदित्य रश्मि की तरह ज्योति प्रकाश बिखरते हुए अवतरित होते हैं। इसमें आराध्य की कथा है? मैं और वह दोनों ही अभिन्न हैं, एक दूसरे में पूर्णतया लीन, या फिर जहाँ जीव है वही शिव विद्यमान है, इस तत्त्व के मूल में सोऽहम् का भाव है उसकी प्राप्ति के परचात ही जो व शिव और भक्त भगवान एक रूप हो जाते हैं, रूप-गुण में दोनों एक हो जाते हैं इनमें कोई पार्यय नहीं रह जाता। और तभी साधारण मनुष्य की दृष्टि में जो अस्मभव प्रतीत होता है वह सम्भव होने लगता है। कभी-कभी स्वयं भगवान भक्तवत्सलता से प्रेरित हो या कभी-कभी भक्ति रस के आवाहन के निमित्त एवं भक्ति के प्रचार और प्रसार के लिये स्वयं भक्त के रूप में अवतरित होते हैं। तभी भक्त में भगवान-तत्त्व और भगवान में भक्त तत्त्व अर्थात् नर में नारायण और नारायण में नर-तत्त्व उद्भासित होने लगता है।

इस भाव के अन्तर्गत ही लोगों की दृष्टि में जगत्त्रय के असाधारण रूप, गुण, उनकी लीला, दृष्टि में आ गई। जिस भाव से अभिप्रभूत हो चेतनपुरुष अपने उपासना कक्ष में विष्णु के आसन पर बैठकर स्वयं उस स्थल पर, विराजमान हो गये थे उसी विशिष्ट भावावेश के अन्तर्गत

जगत्त्रय ने भी यह उद्बोधित किया था कि—'मैं ही हूँ महाप्रभु गौरांग, 'मैं ही हूँ कमल लोचन हरि'।

प्रभु जगत्त्रय के वचन और आचरण में योग विभूति का दर्शन होता। हालांकि वे योग विभूति के पक्षधर नहीं थे। स्वाभाविक दृष्टि से ही वे भूत, भविष्य और वर्तमान को देख लिया करते थे, उनके मुख दिव्य रूप का दर्शन गोलकमणि देवी, शिष्य-वन्द्य रमेशाचन्द्र चक्रवर्ती, बालसखा व सहपाठी बङ्गलाल चिरबास, भक्त महिम दास, विद्वान् कृष्ण गोस्वामी के शिष्य बालकृष्ण देव एवं अनाथ लोगों के मित्रा आ।

गोलकमणि देवी की पुत्री के बिबाह के पूर्व ही प्रभु जगत्त्रय ने कह दिया था, जिस लड़के के साथ सन्तान हुआ है उसके साथ शायी नहीं होगी और यही हुआ भी। बिबाह के कुछ दिव पहले ही अकस्मात् ही उस लड़के को मृत्यु हो गई। रमेशाचन्द्र उच्चतर माध्यमिक तक अध्ययन किये थे परन्तु उसमें उत्तीर्ण नहीं हो पाये थे। प्रभु के उपदेश से वे ब्रह्मचारी होकर साधु सन्यासियों की तरह रहते थे। प्रभु ने कहा भी कि रमेशाचन्द्र बाल्य में प्रोफेसर होंगे। और सत्य ही है कलकत्ता के आलबर्ट कालेज के प्रोफेसर हुए थे। विद्यार्थी जीवन में ही बङ्गलाल विरवास को जगत्त्रय ने कहा था कि वे जन्म बनेंगे, उनका यह आशीर्वाद व्यर्थ नहीं गया था। रमेशाचन्द्र के कहे भाई ज्योतिष-चन्द्र पन्नाह रुपये की सामान्य नौकरी करते थे। प्रभु जगत्त्रय ने कहा था कि वे हाकिम बनेंगे, उनका यह आशीर्वाद बरकत बन गया था, क्योंकि ज्योतिषचन्द्र ज्योतिषी बने थे। यही मोक्षमार्ग-निर्देश

५६

हरि-पुरुष जगत्त्रयं

होगी और उनके बाद छः माह और जीवित रहेगी, जगत्त्रय की यह भविष्यवाणी भी सही साबित हुई थी ।

हवाई जहाज की सृष्टि नहीं हुई थी, तब जगत्त्रय ने कहा था—“भारतवासियों से इंगलैंड तक पहुँचने में कुछ डेढ़ दिन लगेंगे । कालान्तर में तुमलोग देख सकते हो कि इंगलैंड तो क्या समस्त यूरोप खंड में जाना सिंघा सड़क और सुगम हो गया है ।” बहुत पहले ही उनकी भविष्यवाणी सुनी गई थी—‘इंगलैंड राज में भारतवर्ष की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली स्थानांतरित हो जायगी’, ‘बंगाल विभाजन होगा’, ‘बंगाल बिहार और उड़ीसा राज्य तीन गवर्नरों के आधीन रहेगा एवं बिना किसी अस्त्र के उपयोग से ही भारत स्वामीन होगा ।’ उनकी सभी बातें ही कालान्तर में सत्य प्रमाणित हुई थी ।

इस प्रकार अपने दिव्य दर्शन से वे लोगों के सुख दुःख विषय-आपस यहाँ तक कि अकाल मृत्यु पर्यन्त एवं उसको रोकने का उपाय भी वे जान जाते थे । उनके उपदेशों को जिसने भी माना, जीवन में उत्सुकता जन्म जाते थे । उनके उपदेशों और परीक्षण के एक बालक ने अत्यंत कल्याण ही हुआ । बालकृष्णदेव और परीक्षण के एक बालक ने अत्यंत दुःख का संकल्प किया था । यह संकल्प उनके दिव्य दृष्टि के कारण प्रकाश में आया था । उचित समय पर ही दोनों के प्राण क्षा के लिये उन्होंने लोगों को भेज दिया था ।

बादरी के लोकनाथ ब्रह्मचारी के दिव्य शरीर का दर्शन विजयकुण्डा गोस्वामी ने किया था । नवद्वीप में स्थित राधारमण चरणदास बाबाजी के शिष्य हैं उसी प्रकार जगत्त्रय के दिव्य रूप का दर्शन किया गया ।

योग विभूति प्रभु जगत्त्रय के चाहने या न चाहने से क्या होता है, ये तो वे योगी सम्राट ही । योग की विभूति स्वाभाविक रूप से उनको स्वतः दिव्यरूप धारण करेगी ही ।

*

सुरिदासावतार के सन्यासी ने जगत्त्रय के पितृ श्री दीनानाथ जी न्याय रत्न को सही ही कहा था कि जगत्त्रय का अवतरण इस पृथ्वी पर उद्धारकर्ता के रूप में हुआ है । जगत प्रभु के धर्म-कर्म और लीला से भी इस कथन की सत्यता का भान होता है । और इसके साथ ही सत्य प्रमाणित हुआ है । चैतन्य लीला के आदिव्यास लेखक की भविष्य बाणी—

“हेनमत आरो आडे दूई अवतार ।
कीर्तन आनन्दरूप होईवे आमार ॥”

उन्होंने दो अवतारों में एक अवतार है—भावत सत्ता के एकमात्र पुरुष, श्री हरि के मानवीय रूप में, पापियों के उद्धार-कर्ता एवं सम्पूर्ण जगत के वन्द्य—‘हरिपुरुष जगत्त्रय महाउद्धारण’

—:०:—